Year - 3 Issue - 11 January 2019 ISSN 2456-0898

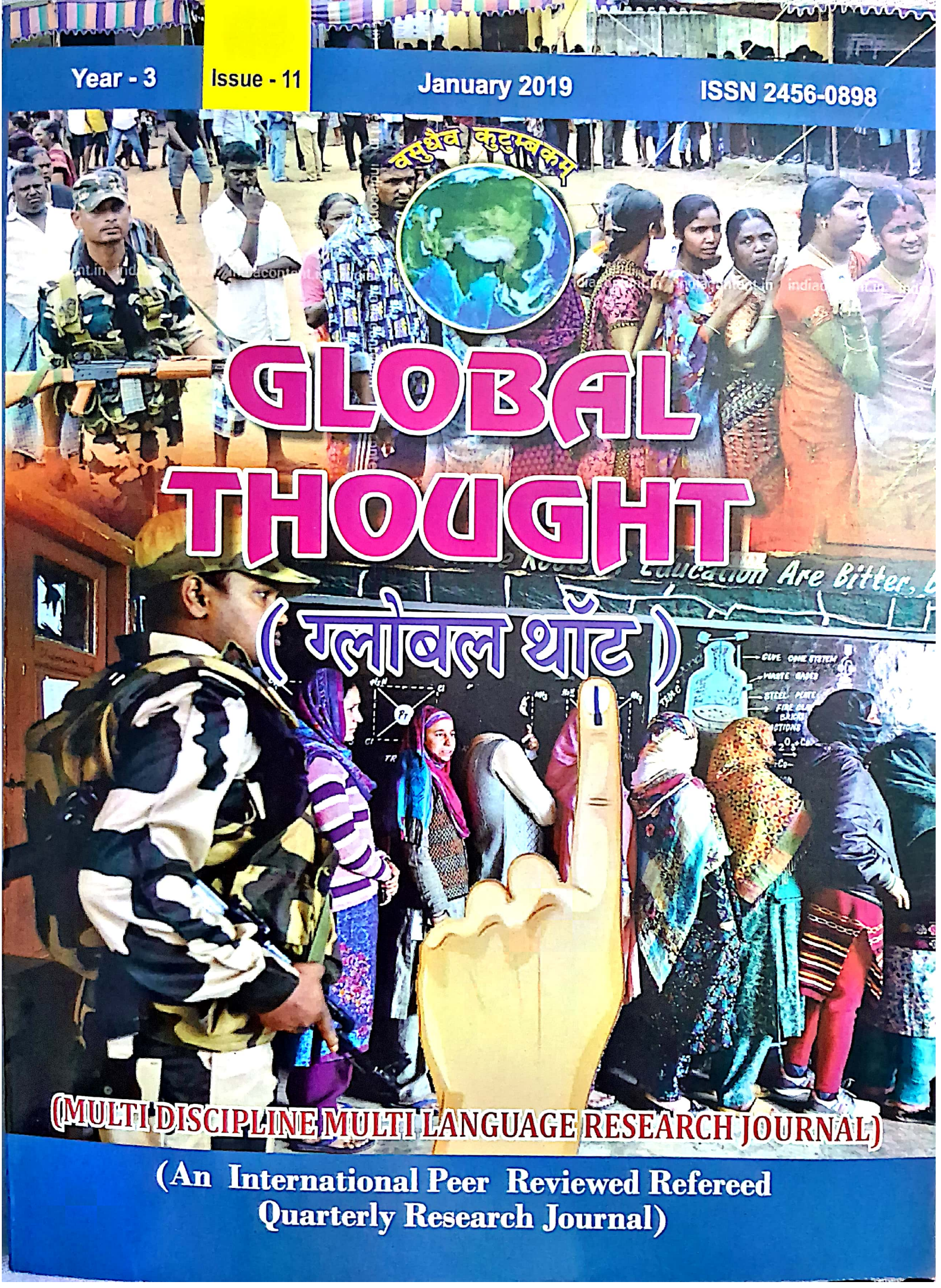

GLOBAL THOUGHT

(ग्लोबल थॉट)

(MULTI DISCIPLINE MULTI LANGUAGE RESEARCH JOURNAL)

(An International Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal)

Scanned with OKEN Scanner

अनुक्रमणिका

Editorial --- 8

दलित साहित्य : हिन्दीत्तर भाषाओं का योगदान... 9

डॉ. पदमा राम परिहार

विवाह संस्कार में विनियुक्त मन्त्रों और तत्सम्बद्ध क्रियाओं के निहितार्थ और सन्देश...................... 14

डॉ. सरस्वती

मूल्यों का संकट : 'समाधान हेतु उपागम' भारतीय संदर्भ में 20

डॉ. श्रीमती कैलाश गोयल

Gender equity in the self help organizations of and for the visually impaired-Prioritize Inclusion ---24

Manjula Rath

वैदिक सृष्टि विज्ञान में जलतत्व (शतपथ ब्राह्मण के परिप्रेक्ष्य में) 27

डॉ. विजय गर्ग

अरस्तू का त्रासदी सिद्धांत 31

डॉ. अनिल कुमार सिंह

বাংলা শিশুসাহিত্যের গতি-প্রকৃতি 35

ড. অনির্বাণ সাহা

आधुनिक जीवन में गीता की सार्थकता 39

डॉ. धनपति कश्यप

लोकतंत्र की चुनौतियां और मीडिया : समसामयिक संदर्भ.. 43

कुमार प्रशांत

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के काव्य-प्रतिमान 47

डॉ. रामेश्वर राय

लोक साहित्य व परंपराएँ : भारतीय स्त्री के मन का दर्पण 52

डॉ. रीनू गुप्ता

विद्रोह की जमीन और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास 58

डॉ. देव कुमार

नज़ीर के नज़्म में सांस्कृतिक नाद 66

डॉ. संगीता राय

सूफी सन्त हजरत अमीर खुसरो का हिन्दुस्तानी संगीत में योगदान 70

डॉ. दीपा वार्ष्णेय

मध्ययुगीन भारत और कबीर का समाजबोध 76

डॉ. सुनीता खुराना

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में अभिव्यक्त यथार्थ (शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में)... 79

डॉ. प्रमोद कुमार द्विवेदी

विनय-पत्रिका और गीतावली में विवेचित सामाजिक एवं आर्थिक जीवन.......................... 83

डॉ. कुमारी अनीता

आर्थिक उदारीकरण के तीन दशक बाद भारत..... 92

डॉ. अबिता कुमारी

The Symbolism Behind Swallowing of Dāvānala by Lord Kṛṣṇa ----------------- 97

Dr. Akshya Kumar Mishra

The Concept of Purusharthas in Indian Philosophy-Its relevance in today's world ---- 101

Dr. Sushma Gupta

हिन्दी नाटकों की विकास-यात्रा 105

डॉ. रतन अरविन्द

अनुवाद : प्रकृति संबंधी विवाद (विज्ञान, कला व शिल्प) 113

डॉ. विकेश कुमार मीना

पुराणों में देवी का स्वरूप 117

डॉ. दिलीप कुमार झा

Being and Keyhole ---------------------------121

Dr. C. V. Babu

Scanned with OKEN Scanner

डॉ. सरस्वती

विवाह संस्कार में विनियुक्त मन्त्रों और तत्सम्बद्ध क्रियाओं के निहितार्थ और सन्देश

(इस शोध लेख में 'संस्कार' शब्द के विविध अर्थों में से धर्मशास्त्र-सम्मत इष्टार्थ, संस्कारों का उद्देश्य और उपयोगिता, संस्कारों की संख्या, विवाह संस्कार का महत्त्व, संस्कारों में उसकी स्थिति तथा विवाह संस्कार में प्रयुक्त विविध मन्त्रों और उनसे सम्बद्ध क्रियाओं के निहितार्थ या संकेतितार्थों पर विचार करते हुए अन्त में निष्कर्ष को रखा गया है।)

भारतीय संस्कृति का वह तत्त्व जो इसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से पृथक् करता है तथा अन्यों की अपेक्षा इसे उत्कृष्ट बनाता है, वह है इसकी संस्कार-व्यवस्था। यह संस्कार-व्यवस्था वस्तुतः भारतीय संस्कृति का प्राण है। यह मानव-निर्माण की ऐसी अद्भुत योजना है, जो शताब्दियों और सहस्राब्दियों से समय की कसौटी पर खरी उतरी है। संस्कार व्यक्ति को व्यवस्थित करके समाज को सुव्यवस्थित बनाने की अद्भुत पद्धति है, जो अपने-आप में अद्वितीय है। किस प्रकार ये संस्कार, इनमें प्रयुक्त सांकेतिक क्रियाएँ और विनियुक्त मन्त्र व्यक्ति के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाते हैं, यह एक अन्यन्त महत्त्वपूर्ण शोध का विषय है। आज, जब हमारे जीवन में संस्कार नाममात्र को ही केवल कर्मकाण्ड तक सीमित हो गए हैं, ऐसी स्थिति में उन संस्कारों में निहित सन्देशों और निहितार्थों का पुनः प्रतिष्ठापन अत्यन्त आवश्यक हो गया है। यह एक अत्यन्त विस्तृत विषय है जो गहन चिन्तन की अपेक्षा रखता है। संस्कारों में विनियुक्त मन्त्र और क्रियाएँ सार्थक और सप्रयोजन हैं, जो किसी विशेष सन्देश को अपने में समेटे हुए हैं।

यही कारण है कि प्रस्तुत शोधपत्र में मैंने विवाह संस्कार में विनियुक्त मन्त्रों और तत्सम्बद्ध क्रियाओं के निहितार्थ और सन्देश को लेखनी का विषय बनाते हुए निम्नलिखित बिन्दुओं को स्पर्श करने का प्रयास किया है।

- 'संस्कार' शब्द का अर्थ
- संस्कारों के उद्देश्य एवं उपयोगिता
- संस्कारों की संख्या
- विवाह संस्कार का महत्त्व और संस्कारों में उसकी स्थिति
- विवाह संस्कार में प्रयुक्त विविध मन्त्र और उनसे सम्बद्ध क्रियाओं के निहितार्थ और सन्देश
- निष्कर्ष

'संस्कार' शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से 'घञ्' प्रत्यय तथा 'सुट्'[1] का आगम करके निष्पन्न किया जाता है। संस्कृत वाङ्मय में संस्कार शब्द विभिन्न सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता हुआ दिखाई देता है। मीमांसकों के अनुसार यज्ञ के अंगभूत पुरोडाश आदि द्रव्यों के वे धर्म संस्कार कहलाते हैं जिनका आधान, प्रोक्षण आदि क्रियाओं के द्वारा पुरोडाश आदि में किया जाता है[2] अद्वैत वेदान्ती स्नान तथा आचमन आदि से जन्य, शरीर की स्वच्छता एवं निर्मलता आदि को संस्कार कहते हैं। जिन्हें वे जीव आत्मा पर मिथ्या आरोप के रूप में स्वीकार करते हैं। नैयायिकों के द्वारा संस्कार चतुर्विंशति गुणों में से एक है। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में 'संस्कार' शब्द का प्रयोग शुद्धि, परिष्कार आभूषण तथा धार्मिक विधि-विधान आदि अर्थों में भी देखा जाता है। महर्षि चरक ने संस्कार शब्द का जो अर्थ किया है वह उपर्युक्त सभी अर्थों को किसी न किसी रूप में अपने में समेटे हुए है। वे कहते हैं-**'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते'**। अर्थात् किसी वस्तु में पूर्व में विद्यमान गुणों के स्थान पर नए गुणों का आधान अर्थात् समावेश 'संस्कार' कहलाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है - कि धर्मशास्त्र में प्रयुक्त संस्कार शब्द मूलतः

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2456-0898

Scanned with OKEN Scanner

दो अर्थों में प्रयुक्त होता हुआ दिखाई देता है।

प्रथम अर्थ - मनुष्य जब इस संसार में आता है तो वह अपने जन्म-जन्मान्तर के शुभाशुभ कर्मों को और उनके प्रभावों को बीज रूप में अपने साथ लेकर आता है, जो अनुकूल देश, काल, परिस्थिति और वातावरण के मिलने पर विकसित होकर व्यक्ति के व्यक्तित्व, स्वभाव और प्रवृत्ति के निर्माण का हेतु बनते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में हेतुभूत जन्म-जन्मान्तरों के शुभाशुभ कर्मों और प्रभावों से जन्य अदृष्ट तथा अनुमानगम्य[4] इन बीजभूत शक्तियों को 'संस्कार' शब्द से अभिव्यक्त किया गया है।

द्वितीय अर्थ - शिशु के जन्म से पूर्व निषेक (गर्भाधान) से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त आयु के विविध सोपानों पर व्यक्ति के मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक और चारित्रिक विकास हेतु आयोजित उत्सवात्मक, धार्मिक और सामाजिक आयोजनों और अनुष्ठानों के लिए 'संस्कार' शब्द प्रयुक्त होता है। पाणिनि संस्कार शब्द में विद्यमान 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु का 'भूषण' अर्थ स्वीकार करते हैं। अत: संस्कार एक अन्वर्थ संज्ञा है। संस्कार शब्द स्वयं अपने उद्देश्य का भी द्योतन कर रहा है। कहने का आशय यह है कि संस्कारों के द्वारा मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के गुणों का विकास तथा अकुण्ठित प्रशस्त व्यक्तित्व का चहुंमुखी निर्माण करके उसे समाज में प्रतिष्ठित करना ही संस्कारों का मूल उद्देश्य है।

गृह्यसूत्रों और स्मृतिग्रन्थों में गर्भ तथा बीज सम्बन्धी दोषों को दूर करने के लिए तथा द्विजत्व की प्राप्ति हेतु संस्कारों की उपयोगिता का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है - इस विषय में मनु कहते हैं -

गार्भैहोमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकंगार्भिकञ्चैनो द्विजानामपमृज्यते।।[5]

द्विजत्व की प्राप्ति में संस्कारों की हेतुता को रेखांकित करते हुए एक अन्य कथन भी देखा जा सकता है -

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते।

मानव के निर्माण की यह प्रक्रिया बालक के जन्म से पूर्व गर्भाधान संस्कार से प्रारम्भ होकर अन्त्येष्टि पर्यन्त एक निरन्तर चलने वाली क्रमबद्ध कार्यक्रम की महती श्रृंखला है, जिसका काल के विविध सोपानों पर पृथक्-पृथक् रूपों में मनुष्य के विकास की तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार विविध संस्कारों के रूप में हमारे समाज के व्यवस्थापकों, नीतिकारों और धर्मशास्त्रकारों ने विधान किया है। संस्कार वस्तुत: जीवन के हर मोड़ पर और प्रत्येक सोपान पर मार्गदर्शन का कार्य करते थे। आयु बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति के जीवन को दिशा देने का तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराने का कार्य संस्कारों के द्वारा किया जाता था।

संस्कारों की संख्या :

भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अङ्गभूत 'संस्कार' शास्त्रीय दृष्टि से गृह्यसूत्रों का विषय माने जाते हैं। गृह्यसूत्रों में संस्कारों की संख्या सर्वत्र एक समान नहीं है। इन गृह्यसूत्रों में संस्कारों की संख्या बारह से लेकर अट्ठारह तक भिन्न-भिन्न दिखाई देती है। प्राय: सभी गृह्यसूत्रों में सर्वप्रथम 'विवाह संस्कार' को रखा गया है तथा अन्तिम संस्कार 'अन्त्येष्टि' दिखाई देता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में संस्कारों की संख्या ग्यारह और पारस्कर तथा बोधायन गृह्यसूत्रों में तेरह-तेरह मानी गयी है। वाराह गृह्यसूत्र ने संस्कारों की संख्या तो तेरह ही स्वीकार की है परन्तु उन्होंने प्रथम संस्कार के रूप में जातकर्म को रखा है। उनके संस्कार विवेचन में विवाह संस्कार को समावर्तन के पश्चात् दशवें स्थान पर रखा गया है। वैखानस गृह्यसूत्र संस्कारों का प्रारम्भ ऋतुसंगमन से करके पाणिग्रहण को अट्ठारहवें अर्थात् अन्तिम स्थान पर रखते हैं। मनु गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कारों की संख्या तेरह मानते हैं।[6] डॉ. राजबली पाण्डेय अपने प्रसिद्ध शोध-ग्रन्थ 'हिन्दू-संस्कार' में परवर्ती स्मृतिकारों व्यास आदि द्वारा स्वीकृत सोलह संस्कारों का उल्लेख करते हैं।

यद्यपि गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा स्मृति साहित्य में संख्या के विषय में स्पष्ट रूप से मतभेद दिखाई देते हैं। तथापि वर्तमान में आधुनिक पद्धतियों में इन संस्कारों की सोलह संख्या को स्वीकार कर लिया गया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रणीत 'संस्कार-विधि' तथा पण्डित भीमसेन शर्मा द्वारा विरचित 'षोडश-संस्कार विधि' में सोलह संस्कारों का ही समावेश किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्वीकृत सोलह-संस्कार क्रमश: इस प्रकार हैं - 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूडाकर्म, 9. कर्णवेध, 10. उपनयन, 11. वेदारम्भ, 12. समावर्तन, 13. विवाह, 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास तथा 16. अन्त्येष्टि।

Scanned with OKEN Scanner

विवाह-संस्कार का महत्त्व और संस्कारों में उसकी स्थिति :

गृह्यसूत्रों और स्मृतियों में विवाह को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अधिकांश गृह्यसूत्रों का प्रारम्भ विवाह संस्कार से किया गया है। विवाह संस्कार को समस्त गृह्यसूत्रों और संस्कारों का उद्गम अथवा मूलभूत कारण माना गया है। विवाह संस्कार स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण यज्ञ माना जाता था। अविवाहित व्यक्ति को अयज्ञीय अथवा यज्ञहीन कहा जाता था।[8] जो वस्तुतः एक निन्दात्मक टिप्पणी है। तैत्तिरीय ब्राह्मण अविवाहित पुरुष को अधूरा बताते हैं, क्योंकि पत्नी पुरुष का आधा भाग है **'अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी'**[9] जो विवाह के पश्चात् पुरुष की पूरक होती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का यह वचन विवाह की महत्ता को रेखांकित करने के लिए पर्याप्त है। भारतीय संस्कृति में तीन ऋणों के सिद्धान्त को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जिसमें सन्तानोत्पत्ति के द्वारा ही पितृऋण से मुक्ति संभव है।[10] अतः सन्तानोत्पत्ति के हेतुभूत विवाह के बिना पितृऋण से मुक्त होना कदाचित् सर्वथा असंभव है। मनु आदि स्मृतियाँ गृहस्थाश्रम को अन्य तीन आश्रमों की अपेक्षा ज्येष्ठ आश्रम स्वीकार करती हैं। क्योंकि यही आश्रम तीनों आश्रमों की भोजनच्छादन आदि की व्यवस्था का भार वहन करता है।[11] इसके अतिरिक्त वंश की अक्षुण्णता के लिए सन्तानोत्पत्ति का साधनभूत 'विवाह' सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इन सभी कारणों से विवाह संस्कार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होने से प्रथम स्थान पर रखा जाता है।

विवाह संस्कार में प्रयुक्त मन्त्रों और उनसे सम्बद्ध प्रमुख क्रियाओं के निहितार्थ और सन्देश :

यद्यपि विवाह संस्कार में मुख्य विधि से पूर्व तथा उसके बाद भी अनेक क्रियाओं का अनुष्ठान किया जाता है तथापि मैंने इस आलेख में केवल मुख्य विधिभाग की ही प्रमुख क्रियाओं और मन्त्रों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। जो क्रमशः इस प्रकार है –

वर का स्वागत (आसन, अर्घ्य, मधुपर्क) समञ्जन-मन्त्र, पाणिग्रहण, शिलारोहण (अश्मारोहण), लाजा होम, सप्तपदी, अभिसिञ्चन और हृदयालम्भन (हृदय-स्पर्श)।

वर का स्वागत (आसन, अर्घ्य, मधुपर्क) – विवाह के दिन आयोजित की जाने वाली विधियों में सर्वप्रथम वर का स्वागत किया जाता है। जब वधू पक्ष के लोग पिता, भाई आदि वर को आसन ग्रहण करने के लिए निवेदन करते हैं तो वर आसन पर बैठते हुए जिस मन्त्र का उच्चारण करता है उसका भाव यह है – ''मैं बराबर वालों में वैसे ही श्रेष्ठ हूँ, जैसे नक्षत्रों में सूर्य है। मैं अपना विरोध करने वालों को वैसे ही कुचल डालूँगा, जैसे इस आसन को पैर के नीचे दबा रहा हूँ।''[12] इस मन्त्र में हमें संकेत मिलता है कि – अपने बराबर वालों में श्रेष्ठता की घोषणा से ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह नामक संस्था के प्रारम्भिक काल में अथवा उसके अस्तित्व में आने से पूर्व, किसी कन्या से विवाह करने से पूर्व अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनी पड़ती थी, जिसके लिए युवा-वर्ग में संघर्ष अथवा युद्ध होता था जिसका संकेत इस मन्त्र के द्वारा की गई घोषणा में देखा जा सकता है। महाभारत काल में भीष्म पितामह द्वारा अम्बा और अम्बालिका को युद्ध करके जीतकर लाना तथा द्रौपदी के स्वयंवर में मत्स्य लक्ष्य भेदन की शर्त भी इसी उक्त मन्त्र में निहित संकेत की पुष्टि करते हुए जान पड़ते हैं।

मधुपर्क में दही, शहद और घी का प्रयोग होता है।

- दही – अग्निदीपक, स्निग्ध, बल और वीर्य की वृद्धि करने वाला तथा वातनाशक है।
- शहद – मधुर, स्वादिष्ट, अग्निवर्धक और कफ को दूर करता है।
- घृत – कान्ति, तेज, बुद्धिवर्धक, विष और पित्तनाशक होता है।

मधुपर्क के द्वारा नववधू को शिक्षा दी जा रही है कि भोजन ऐसा होना चाहिए जो वात, पित्त और कफ इन तीनों को सम रख सके तथा वह भोजन मधुर, स्वादिष्ट, शक्तिवर्धक और रुचिकर भी होना चाहिए।

वर मधुपर्क को हाथ में लेकर यह वाक्य बोलता है - **'ओम् मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे॥'**[13] इसके साथ ही पूर्व आदि चारों दिशाओं में तथा ऊपर की ओर मधुपर्क के छींटे देने के बाद स्वयं उस मधुपर्क से किंचित् मात्र ग्रहण करता है। इस मधुपर्क विधि में प्रयुक्त उक्त वाक्यांश का मूल सन्देश यह प्रतीत होता है कि जब खाने का पदार्थ हमारे सामने आए तब हम उसे मित्र की दृष्टि से देखें। अरुचि और अप्रसन्नता से खाया हुआ भोजन शरीर का अंग नहीं बनता। इसलिए मनु महाराज कहते हैं - **'दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च।'**[14] पूर्व आदि दिशाओं में छींटे देने का रहस्य

Scanned with OKEN Scanner

यह है कि कोई विद्वान अतिथि, दीन-हीन, रुग्ण तथा आस-पास में रहने वाले लोग एवं पशु-पक्षी आदि भी यदि घर में आ जाएं तो उन्हें भी अपने भोजन में से कुछ हिस्सा अवश्य देना चाहिए अर्थात् बाँटकर खाने की शिक्षा इस विधि से मिलती है। ऋग्वेद भी कहता है कि जो बिना बाँटे अकेला खाता है, वह पाप खाता है।[15]

समञ्जन मन्त्र - विवाह की मुख्य विधि हेतु जब वर और वधू यज्ञ मण्डप में आते हैं तब दोनों निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हैं -

ओम् समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥[16]

इस मन्त्र का मूल सन्देश यह है कि वर-वधू दोनों प्रार्थना करते हैं कि हमारे हृदय इस प्रकार मिल जाएं जैसे दो जल आपस में मिल जाते हैं। यहाँ दो जलों के मिलने से दो हृदयों के मिलने की उपमा का रहस्य यह है - दो नदियों, कूपों अथवा वर्षा आदि के जल को मिला देने पर किसी प्रकार से कोई भी उन दो जलों के मिश्रण को पृथक् नहीं कर सकता अतः यह समञ्जन वर-वधू के अटूट स्नेह या प्रेम का प्रतीक है।

पाणिग्रहण - पाणिग्रहण की क्रिया के साथ विनियुक्त मंत्र **'ओम् गृभ्णामि ते सौभगत्वाय'**[17] इत्यादि मन्त्र के माध्यम से वर यह घोषणा करता है कि मैं ऐश्वर्य तथा सौभाग्य के लिए तेरा पाणिग्रहण करता हूँ; तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर। इस क्रिया के विषय में डॉ. राजबलि पाण्डेय लिखते हैं-'यह क्रिया कन्या का दायित्व तथा भार सम्भालने का प्रतीक है। यह दायित्व अत्यन्त पवित्र है क्योंकि कन्या उसके पिता द्वारा ही नहीं, उपर्युक्त अधिष्ठातृ देवताओं द्वारा भी दी हुई समझी जाती है, जो प्रत्येक गम्भीर अनुबन्ध के साक्षी हैं।''[18]

शिलारोहण (अश्मा-रोहण) - प्रतिज्ञा मन्त्रों के अनन्तर वधू के दाहिने पैर को शिला (पत्थर) पर रखवाने की क्रिया की जाती है। यह क्रिया वधू के गृहस्थ जीवन में सभी सम और विषम परिस्थितियों में चट्टानों जैसी दृढ़ता से रहने की प्रतीक है।

लाजा-होम - यह विवाह संस्कार में अनुष्ठित अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि में वधू का भाई अपनी बहन की अञ्जलि में शमी-पत्र से युक्त धान की खील भरता है तथा वधू उन्हें मन्त्रोच्चारण पूर्वक वर की सहायता से यज्ञ-कुण्ड में समर्पित करती है।

यह विधि वैवाहिक जीवन की अनेक वास्तविकताओं की ओर इंगित करती है। सर्वप्रथम इस विधि में वर और वधु मिलकर खीलों की आहुति यज्ञ-कुण्ड में देते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि किसी भी यज्ञ कार्य या गृहस्थ जावन के सामाजिक कार्य करने में भले ही आप अकेले-अकेले समर्थ हैं तथापि उन्हें मिलकर ही करना चाहिए। दूसरी बात यह है कि इस विधि में धान की खीलों से आहुति दी जाती है। धान का वैशिष्ट्य दो दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जब धान की भूसी (तुष्) को अलग करते हैं तो उसमें से चावल निकलता है। धान की अपेक्षा चावल अधिक मूल्यवान होता है। तथा भूसी के धान से अलग होने पर उसका कोई मूल्य नहीं रहता अथवा सर्वथा नगण्य होता है। परन्तु जब तक भूसी धान के साथ होती है तब तक वह चावल के समान कीमती होती है। इसी प्रकार स्त्री जब तक पति के रहती है तब तक उसे समाज में पति के समान ही प्रतिष्ठा और महत्त्व प्राप्त होता है। पति से अलग होने पर वह सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं रहती या अत्यन्त क्षीण हो जाती है। धान की दूसरी विशेषता यह है कि चावल के भूसी से अलग होने पर उसका मूल्य तो बढ़ जाता है, परन्तु वह अपनी उत्पादक शक्ति खो देता है। कोई भी किसान चावल को अपने खेत में बोकर फसल प्राप्त नहीं कर सकता। चावल को अंकुरित होने के लिए भूसी का उसके साथ होना अपरिहार्य है। इससे यह शिक्षा और सन्देश स्पष्ट रूप से मिलता है कि जैसे चावल को अपनी उत्पादकता बनाए रखने के लिए भूसी को साथ रखना ही पड़ता है वैसे ही पुरुष को सन्तान प्राप्ति और वंश परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए पत्नी को साथ रखना भी अपरिहार्य होता है। इस प्रकार पति और पत्नी एक-दूसरे के पूरक होते हैं।

शमी-युक्त लाजाओं के होम से यह भी संकेत मिलता है कि पुरुष, स्त्री के बिना समाज में शमी की भाँति कितना ही फलता-फूलता रहे परन्तु लाजा (धान की खील) की तरह वह सन्तानरूपी अंकुर को उत्पन्न नहीं कर सकता।

अतः वधू पति कुल से कभी भी अलग न करने की प्रार्थना करती है।[19] विवाह संस्कार में धान की खील (लाजा) के प्रयोग का, एक अभिप्राय इस बात की ओर संकेत करना भी है कि जैसे धान को पहले एक स्थान पर

Scanned with OKEN Scanner

बोकर उसकी पौध तैयार की जाती है और फिर उसे दूसरे खेत में रोपा जाता है वैसे ही कन्या का पहले पितृगृह में लालन-पालन होता है और फिर विवाह संस्कार के बाद पतिगृह में जाकर वहाँ सन्तति से फलती-फूलती है। इससे जिस कुल में कन्या का जन्म होता है उसी कुल में उसके विवाह का निषेध भी संकेतित है।

सप्तपदी - लाजा होम और अग्नि-परिक्रमा के समान सप्तपदी भी विवाह की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधि है। वैधानिक दृष्टि से सप्तपदी के पश्चात् विवाह पूर्ण समझा जाता है।[20] सप्तपदी में वर-वधू दोनों यज्ञकुण्ड की उत्तर दिशा में एक-साथ मिलकर सात कदम चलते हैं। इन सात पगों को उत्तर दिशा में आगे रखने से पहले वर वधू को कहता है -

'मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम' अर्थात् तू उल्टे पैर से सीधे का उल्लंघन मत करना। वर के उक्त कथन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सन्देश यह है कि गृहस्थ जीवन के मार्ग पर चलते हुए हमेशा यह ध्यान रहना चाहिए कि किसी भी स्थिति में अन्याय के सामने न्याय, कुटिलता के सामने सरलता और असत्य के सामने सत्य कहीं पीछे न छूट जाए अथवा दब न जाए।

सप्तपदी में उठाए गए सात कदमों के साथ सात मन्त्रों का विनियोग किया गया है।[21] सप्तपदी के द्वारा वर-वधू को यह सन्देश दिया जाता है कि गृहस्थ आश्रम आराम से बैठने का आश्रम नहीं है अपितु यह पति-पत्नी को एक-दूसरे के साथ मिलकर कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढ़ने और जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने का आश्रम है। गृहस्थ जीवन के जिन सात उद्देश्यों का वर्णन इन विनियुक्त मन्त्रों में किया गया है वे इस प्रकार हैं - प्रथम कदम 'अन्न के लिए', द्वितीय कदम 'बल के लिए' (ऊर्जे), तृतीय कदम 'धन के लिए' (रायस्पोषाय), चतुर्थ कदम 'सुख के लिए' (मयोभवाय), पाँचवां कदम 'उत्तम सन्तान के लिए' (प्रजाभ्यः), छठा कदम 'ऋतुओं के लिए' अर्थात् ऋतुओं के अनुकूल जीवन चर्या के लिए (ऋतुभ्यः) तथा सातवाँ कदम 'सखाभाव से परस्पर मैत्रीपूर्ण व्यवहार के लिए' (सखा) इन मन्त्रों में क्रमशः बताए गए हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि गृहस्थरूपी गाड़ी के पति और पत्नी रूप दो पहिये हैं जो एक-साथ सम रहकर चलेंगे तभी यह गृहस्थरूपी गाड़ी आगे बढ़ पाएगी तथा जीवन के लक्ष्य प्राप्त हो सकेंगे।

अभिसिञ्चन - सप्तपदी के पश्चात् अन्य महत्त्वपूर्ण विधि वधू का अभिसिञ्चन है। इसका साक्षात् प्रयोजन तो यज्ञ कुण्ड की अग्नि से उत्पन्न ऊष्णता का शमन कहा जा सकता है। परन्तु इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निहितार्थ यह है कि गृहस्थ-आश्रम में प्रविष्ट नव-दम्पती के मध्य किन्हीं कारणों से कोई कलह अथवा विचार भेद होने से क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो जाए तो घर परिवार के वृद्धजनों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने जल समान शीतल वचनों और शिक्षाओं से उन्हें शान्त कर दें। संयुक्त पारिवारिक परिवेश में यह जल-सेचन की क्रिया वृद्धजनों के दायित्व की ओर संकेत करके उन्हें अपने कर्त्तव्य का बोध भी कराती है।

हृदयालम्भन या हृदय स्पर्श - इस विधि में वर-वधू एक-दूसरे के हृदय को स्पर्श हुए **'मम व्रते ते हृदयं दधामि'** इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हैं। यह विधि और इसमें विनियुक्त मन्त्र वस्तुतः सफल गृहस्थ जीवन का मूल मन्त्र है। यह मन्त्र आज विवाह-विच्छेद (तलाक) की समस्या से जूझते हुए विश्व के सामने, इस समस्या के निवारण का अद्भुत समाधान प्रस्तुत करता है। यह समाधान समस्या के कारण भूत जड़ पर प्रहार करता है। तलाक का मूल कारण है पति-पत्नी के मध्य एक-दूसरे भावों को न समझना, एक-दूसरे की भावनाओं और विचारों को सम्मान न देकर अपनी मनमानी करना। इस मन्त्र के द्वारा वधू, वर से और वर, वधू से परस्पर कहते हैं-हे प्रिय! तुम्हारे आत्मा और अन्तःकरण को मैं अपने व्रत अर्थात् कर्म के अनुकूल धारण करता (करती) हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल तुम्हारा चित्त सदा रहे। मेरी वाणी को तू एकाग्र होकर सेवन किया कर। प्रजापति (परमात्मा) ने तुम्हें मेरे लिए नियुक्त किया है।

इस मन्त्र में परस्पर एक-दूसरे के विचारों को एकाग्रता पूर्वक सुनते हुए परस्पर अनुकूल व्यवहार का विधान इस बात का संकेत करता है कि सफल गृहस्थ जीवन हेतु परस्पर एक-दूसरे के चित्त की अनुकूलता और एक-दूसरे के विचारों और भावनाओं का हृदय से सम्मान करना पति-पत्नी दोनों का कर्त्तव्य है।

जहाँ पति-पत्नी में विचार भेद या मतभेद ही नहीं होते वहाँ मनों में भेद की सम्भावना ही नहीं रहती। अतः वैदिक विवाह अथवा गृहस्थ आश्रम में इस मन्त्र की शिक्षा के अनुरूप आचरण से विच्छेद की आशंका को निर्मूल किया जा सकता है।

निष्कर्ष - निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि

Scanned with OKEN Scanner

वैदिक विवाह संस्कार में की जाने वाली क्रियाएँ और अनुप्रयक्त मन्त्र गृहस्थ जीवन की सफलता हेतु अपरिहार्य कर्त्तव्यों, आचरणों और सामाजिक तथा पारिवारिक दायित्वों की और संकेत करते हैं और उन पर आचरण करने का सन्देश भी देते हैं। अतः विवाह संस्कार में प्रयुक्त विविध क्रियाएं और मन्त्र वस्तुतः सफल गृहस्थ जीवन के वे सूत्र हैं जो सफल एवं सुखी गृहस्थ के ताने-बाने को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। आवश्यकता है उनके निहितार्थों को समझकर उन पर आचरण करने की।

असिस्टेंट प्रोफेसर (संस्कृत)
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन्दर्भ सूची

1. सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे। (अष्टाध्यायी) 6.1.137
2. प्रोक्षणादि जन्य .... द्रव्यधर्मः। वाचस्पत्यं बृहदभिधान, पृ. 5188. (हिन्दू संस्कार से उद्धृत)
3. स्नानाचमनादिजन्याः संस्कारा देहे उत्पद्यमानानि तदभिधानानि जीवे कल्प्यन्ते। वही।
4. मनु. स्मृ. -2.27.
5. मनु. स्मृ. - 2.27
6. 'हिन्दू संस्कार', पृ. 24.
7. अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः। (तै. ब्रा. 2.2.2.61)
8. वही, 29, 4, 7
9. जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः। तै. स. 63,105.
10. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।
    यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहन्।
    गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।। म.स्मृ. 3,77-78.
11. वर्षोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।
    इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति।।
    पारस्करगृह्य सूत्र 13,8.
12. पार. - 1.3.16.
13. मनु.स्मृ. - 2/54.
14. 'केवलाघो भवति केवलादी' ऋग्वेद - 10,117,6.
15. ऋग्वेद - 10, 85, 47.
16. ओम् गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिमार्ह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः। ऋग्वेद - 10,85,136.
17. हिन्दू संस्कार, पृ. 277.
18 ओम् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुक्रचतु मा पतेः स्वाहा। इदमर्यमणेअग्नये-इदन्न मम।। (संस्कारविधि लाजाहोम-प्रथम मन्त्र)
19. पाणिग्रहणमन्त्रास्तु नियतं दारलक्षणम्।
    तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विवाहात् सप्तमे पदे।।
    (म.स्मृ. 9/70)
    नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते।
    पाणिग्रहणसंस्काराात् पतित्वं सप्तमे पदे।।
    (याज्ञवल्क्य स्मृति)
20. ओम् इषे एक परी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुप्त्वा नयतु। पुत्रान् विन्दाव है बहूस्ते सन्तु जरदष्टयः।।
    पा. 1/7/19

Scanned with OKEN Scanner

RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-01
January-2019
ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

आधुनिक संस्कृत रूपकों में वर्णित नारी पात्रों का वैवाहिक जीवन

[1]अनुपम कुमारी, [2]डॉ. सरस्वती

सरस्वती

[1]शोधकर्त्री पीएच.डी. (संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)
[2]शोध–निर्देशिका (जाकिर हुसैन कॉलेज)

विवाह शब्द स्वयं में उन सभी बंधनों को द्योतित करता है जिनमें केवल दंपत्ति ही नहीं अपितु दो परिवार आपस में सभी प्रकार से बंध जाते हैं। विवाह वास्तव में दो परिवारों का मिलन है परंतु प्रथमदृष्ट्या जो इससे सबसे अधिक प्रभावित होता है वह नारी है। नारी अपने एक परिवार को छोड़कर दूसरे परिवार में ठीक उसी प्रकार मिश्रित हो जाती है जिस प्रकार प्रकाश की रेखा एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी समान गति तथा निर्बाध रूप से सभी को प्रकाशमान करती रहती है।

विवाह के इस वास्तविक रूप को मानव समाज ने समझा भी और सराहा भी। अपनाने के इस बंधन को सभी ने पवित्र समझा परंतु कालांतर में यह विवाह अपने नियमों और मान्यताओं के कारण कई प्रकारों में बँट गया।

इस प्रकार इस पवित्र बंधन को आठ भागों में बाँटा गया। ये आठ प्रकार निम्न प्रकार से हैं–

(i) ब्रह्मविवाह
(ii) देव विवाह
(iii) आर्ष विवाह
(iv) प्राजापत्य विवाह
(v) आसुर विवाह
(vi) गान्धर्व विवाह
(vii) राक्षस विवाह
(viii) पैशाच विवाह

विवाह के इन आठ प्रकारों में प्रथम चार प्रकार अपने आप में प्रतिष्ठा को प्राप्त किए हुए हैं परन्तु अन्तिम चार समाज में अपनाए तो जाते हैं परन्तु सम्मान हीनता के साथ। ये वांछनीय अथवा अवांछनीय विवाह प्रकार कोई भी हो, अन्ततोगत्वा इससे यदि कोई सर्वाधिक प्रभावित होता है तो वह है– नारी।

प्राचीन कतिपय नाट्यकारों ने जहाँ अपनी नाट्यों में गान्धर्व विवाह को कहीं–कहीं पर ही स्थान दिया है, वहीं आधुनिक नाट्यकारों ने इसकी भीषणता और इसके सबसे निंदनीय रूप को उजागर किया है। आधुनिक समय में जहाँ समाज में वांछनीय विवाह प्रकारों पर युवाओं द्वारा कम बल दिया जाता है जो कि परिवार तथा समाज दोनों में महत्वपूर्ण एवं सम्माननीय होते हैं वहीं उनके स्थान पर अंतिम चार अवांछनीय प्रकारों पर अधिक बल दिया जाता है, क्योंकि समय परिवर्तन के साथ–साथ नैतिकता का जो ह्रास हुआ है उसने इन विवाह प्रकारों को बल दिया है।

नारकण्डाश्रम नाट्य की नायिका शकुन्तला जो कि भारत–पाक विभाजन में अपने परिवार से अलग हो गई थी कि कथा वर्णित है। पिता की अनुपस्थिति में गान्धर्व विवाह के द्वारा गर्भवती उस कन्या को प्रवास से लौटे पिता के द्वारा पतिगृह भेजा जाता है, परंतु गोली लगने वाली दुर्घटना के कारण शकुन्तला का पति अपनी स्मरण शक्ति खो चुका है, और इसी दृश्य के इर्द–गिर्द पूरा नाट्य अवलोकित होता रहता है।

गन्धर्व विवाह की चार्चा विष्णुपदभट्टाचार्य जी के कञ्चुकि में भी है। आधुनिक नाट्यकारों ने विवाह के अनेक प्रकारों की चर्चा की है, लेकिन इन नाट्यकारों का मुख्य केन्द्र विवाह के स्वरूपों को दर्शाना नहीं अपितु विवाह में आ रहे व्यवधानों अथवा विवाह को करने के लिए सरल से सरल उपाय को ढूँढने का है। कई स्थलों पर नाट्यकारों ने प्रेम विवाह का समर्थन भी दिखाया है।

"व्यासराज शास्त्री द्वारा रचित लीला–विलास प्रहसन में लीला का विवाह पिता और माता दोनों के ही द्वारा अलग–अलग स्थानों पर तय किया जाता है, परन्तु लीला इन दोनों के ही निश्चित वर को वरण करना नहीं चाहती। वह अपने सहपाठी विलास कुमार से प्रेम करती है और इस विषय में उसके भाई सत्यव्रत को पूर्ण जानकारी होती है। आधुनिक युग होने के कारण सत्यव्रत पुरुष होने के कारण उपरांत भी अपनी बहन के प्रेम का निर्धारक और निर्णायक बनते हुए उसका समर्थन करता है। अन्त में दस्यु के बंधन से लीला को मुक्त करवाने के फलस्वरूप विलास को लीला पत्नी रूप में प्राप्त हो जाती है।"[1]

रमा चौधरी आधुनिक नाट्यकृर्तियों में शिरोमणि हैं। उनके नाट्य आधुनिक समाज के प्रत्यक्ष प्रतिबिंब के रूप में समाज तथा उनकी सोच को उजागर करते हैं। विवाह के विषय में रमा ने अपनी नायिका पंकजनयना को उच्च कोटि का बनाते हुए उसे किसी भी पुरुष के हाथ में सौंपना स्वीकार नहीं किया है। पंकजनयना की माता अपनी पुत्री के विषय में इतनी तटस्थ है कि किसी भी अवस्था में वो अपनी पुत्री को उसके अनुरूप ही घर और वर प्रदान करना चाहती है। वो विवाहार्थी बनकर आए धनी परंतु अयोग्य वर को सीधे–सीधे

[1]आधुनिक संस्कृत नाटक (नए तथ्य–नया इतिहास), रामजी उपाध्याय, पृष्ठ 971–72

RRIJM 2015, All Rights Reserved

96

Scanned with CamScanner

इसलिए मना कर देती है क्योंकि वह अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर चाहती है, केवल धनी नहीं।

"नवोढ़ा वधू वरश्च" में नपुंसक कन्या के विवाह के आ रही परेशानियों का वर्णन है। परिवार द्वारा विवाह में रूकावट ना आए इसलिए इस बात को छिपाया जाता है कि कन्या नपुंसक है। विवाहोपरान्त पति–पत्नी के मिलन की सभी चेष्टाओं को व्यर्थ कर दिया जाता है, परन्तु अंत में पत्नी के द्वारा स्वयं ही पति को सब कुछ निवेदित कर दिया जाता है। यथार्थ के उद्घाटन से पहले कन्या के द्वारा इस वचन को ले लिया जाता है कि पति द्वारा उसका त्याग नहीं किया जाएगा।"[2]

भक्तसुदर्शन और शंकराविटं इन दोनों ही नाट्यों में प्रेम विवाह का समर्थन और उनका विरोध समान रूप से नजर आया हुआ है।

भक्तसुदर्शन में जहाँ माँ जगदम्बा द्वारा स्वप्न में दर्शन देकर यह आदेश दिया जाता है कि शशिकला सुदर्शन को ही वर रूप में चुने, इसलिए शशिकला सुदर्शन से प्रेम कर उससे विवाह करना चाहती है वहीं शंकराविटं में कन्या अपने सहपाठी से स्वेच्छा से प्रेम करती है और उसी से प्रेम–विवाह करना चाहती है।

इन दोनों ही नाट्यरूपों में विवाह का एक अलग ही स्वरूप निर्दिष्ट हो रहा है जो कुछ लोगों के लिए न तो वांछनीय है और न ही अवांछनीय। समाज का एक वर्ग जहाँ इसका विरोध करता है वहीं दूसरा इसके समर्थन में दृष्टिगोचर है।

सावित्री–चरितम् डॉ. मिजाजी लाल शर्मा द्वारा रचित इसी प्रकार का एक और नाट्य स्वरूप है, परंतु इसकी कथावस्तु अन्य सभी कथावस्तुओं से सर्वथा भिन्न जान पड़ती है क्योंकि न तो इसमें प्रेम–प्रसंग है और न ही पिता द्वारा कन्या को बलपूर्वक अथवा कन्या की इच्छा से ही अपने चुने हुए लड़के के साथ विवाह करने के लिए बाधित करते हुए दिखाया गया है। यहाँ तो स्थिति ही सर्वथा विपरीत है। पिता द्वारा कन्या को स्वेच्छानुसार वर ढूँढने की आज्ञा दी जाती है और पूर्ण रूप से कन्या की इसमें सहायता भी की जाती है। वे कन्या के विषय में सोचते हैं कि वह केवल धरोहर रूप में ही आपके निकट रह सकती हैं, सदैव नहीं।[3] प्रस्तुत नाट्य में कन्या स्वेच्छानुसार वर ढूंढ लिए जाने पर भी यह वक्तव्य कि गुणवान अथवा गुणहीन, एक बार वरण किए हुए वर का परित्याग संभव नहीं, इस बात को द्योतित करता है कि कन्याओं को सुयोग्य वर न मिलने पर भी वे उसकी अयोग्यता के कारण उसका परित्याग नहीं करती थी।

नाट्यों में विवाह के इन प्रकारों से यह दृष्टिगोचर है कि किस प्रकार वर्तमान समय में विवाह के प्रारूपों ने अपना नया रूप धारण कर लिया है। जिसके कारण अन्य मूल रूपों में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

पुनर्विवाह

नारी जीवन सदैव परीक्षा पूर्ण करने की कसौटियों से भरा हुआ रहा है। वर्तमान काल हो अथवा प्राचीन हिन्दू विवाह आदर्श अथवा अन्य धर्मों के विवाह आदर्श–सदैव से यहाँ स्त्रियों को अपने सतीत्व की रक्षा करने का पाठ पढ़ाया गया है। पति के जीवित रहने अथवा उनकी मृत्यु के पश्चात्, परिस्थिति कैसी भी हो लेकिन स्त्री को अपनी अस्मिता और अपना सतीत्व दोनों ही बचाकर रखना अनिवार्य था। इनके हीन हो जाने पर नारी का जीवन अत्यन्त असहनीय स्थिति से गुजरता हुआ निम्न से निम्नतर चला जाता था। आज भी परिस्थिति में कुछ बहुत अन्तर नहीं परन्तु जितना भी अन्तर दिखाई देता है वह नारियों के लिए कम से कम तत्काल प्राणघातक तो नहीं ही है।

प्राचीन नाट्यों में अगर देखें तो विधवा–विवाह या पुनर्विवाह के सङ्केत बहुत कम प्राप्त होते हैं। कालिदास अथवा भास की रचनाओं में प्रधानतः जहाँ नायक की मृत्यु नही होती और यदि किसी पत्नी का परित्याग कर दिया जाए तो वे पुनः उसी के पास लौट आती है, ऐसे नाट्यों को ही प्रारुप प्रदान किया जाता है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में जहाँ शकुन्तला परित्यक्ता होने पर भी पुनः विवाह नहीं करती वहीं भास की वासवदत्ता स्वयं पति से वियुक्त हो जाने पर भी पुनः विवाह की चेष्टा नहीं करती।

इन दोनों ही प्रमुख नाट्यों में केवल स्त्री का पुनर्विवाह नहीं हुआ परन्तु नायक दुष्यन्त और उदयन किसी न किसी प्रकार से दाम्पत्य जीवन का आनंद उठा रहे थे। उन्हें पुनर्विवाह करने में भी कोई संकोच न था। परिस्थितियाँ और स्थितियाँ केवल और केवल नारियों के लिए ही अपरिवर्तनीय रहीं।

आधुनिक नाट्यकारों ने समाज की बदलती परिस्थिति के अनुसार अपने नाट्यों में भी इस समस्या का कोई उपाय तो नहीं सुझाया परन्तु कतिपय स्थानों पर पुनर्विवाह का उल्लेख अवश्य किया है।

वृत्तशसिच्छन्नम् की नायिका द्वादश वर्षीय मीरा जिसका 28 वर्षीय पति अपनी 26 वर्षीय सास से ही प्रेम करने लगता है, के जीवन में अनेक बाधाएँ आती है और वह आत्महत्या का प्रयास करती है, परंतु त्यागी बाबा द्वारा उसके प्राणों की रक्षा कर ली जाती है और वही बाबा उसे अपने पूर्व पति के रूप में ही प्राप्त हो जाते है। नाट्य के इन दृश्यों में संतुष्टि तथा हर्ष की भावना तो स्वतः आ ही जाती है परन्तु पति वियोग के कारण 18 वर्षों तक जिस मीरा को विधवा रूपी जीवन अथवा कहा जाए कि कष्टपूर्ण जीवन बिताना पड़ता है उसके लिए समाज में केवल एक ही स्वरूप है– विधवा। वह किसी भी पुनर्विवाहिता के रूपों न तो सोची जा सकती है और न ही उसका यो अधिकार है।

[2] कलकत्ता संस्कृत साहित्य पत्रिका के 1963 के अङ्कों में प्रकाशित

[3] कन्या भरवन नून न्यास पिति ह्युच्यते।
कालेन यस्मि सोऽपि सर्वदा न दृश्यते।।
सावित्रीचरितम्– डॉ. मिजाजी लाल शर्मा, पृष्ठ 66

RRIJM 2015, All Rights Reserved

97

Scanned with CamScanner
Scanned with OKEN Scanner

इन परिस्थितियों से तत्कालीन समाज की रूढ़ि परंपराओं का आभास होता है कि जिस समाज ने एक 12 वर्षीय बच्ची को पति के अभाव में 18 सालों तक विधवा समझा, क्या वह समाज उसे अन्य किसी के साथ विवाह करने का अवसर नहीं दे सकता था। नाट्यानुसार नायिका मीरा सरल हृदया, सुन्दरी तथा भावुकता से परिपूर्ण थी, तो क्या ऐसी विधवा को कोई पुरुष अपने लिए सुयोग्य नहीं समझता था? क्या यह आवश्यक था कि वो सारा–जीवन स्वयं को त्यागे हुए पति अथवा मृतक समझे जाने वाले पति के विरह में त्याग दे?

लीला राव की 'बालविधवा' भी इसी कथा को जीवंत करती एक अन्य उदाहरण रूपा प्रस्तुति है। ससुराल में दासी जीवन व्यतीत करती बाल विधवा पार्वती अपनी इच्छा एवं अनुराग को दबाकर जी रही थी। वह चाहकर भी पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी। अनूप के साथ घर छोड़ देना भी उसके लिए कठिनाईयों का सागर जन्म दे देता है जिसके कारण वह आत्महत्या तक करने पर मजबूर हो जाती है।

प्रस्तुत नाट्य में लीला राव यह संदेश देती हुई दिख रही है कि विधवाओं का पुनर्विवाह कर देना चाहिए अन्यथा वो ऐसे कमद उठाने पर मजबूर हो जाती है जो समाज में अवांछनीय है।

"इसके विपरीत रमा चौधरी ने अपनी विधवा नायिका को पुरुष के सहारे न छोड़ उसके जीवन की दिशा ही बदल दी। रसमय–रासमणि में रानी रासमणि ने स्वयं अपनी राजधानी की रक्षा की और नीहले–गोरण्ड सैनिकों को परास्त किया। दक्षिणेश्वर में 12 मन्दिरों का निर्माण करवाकर उन्होंने रामकृष्ण परमहंस को प्रधान पुजारी बनाया। इस प्रकार लोकहित के कार्यों में संलग्न अन्त में महासमाधि प्राप्त कर ली।"[4]

सन्दर्भ ग्रन्थ

मूल ग्रंथ

1. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम. महालक्ष्मी प्रकाशन. आगरा. 1962.
2. चौधरी, रमा. देशदीपम. कलकत्ता: प्राच्यवाणी प्रकाशन, फेडरेशन, स्ट्रीट
3. चौधुरी, रमा. रसमयरासमणि. कलकत्ता: प्राच्यवाणी प्रकाशन
4. दीक्षित, मथुराप्रसाद. भक्तसुदर्शन. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सिरीज, 1961
5. भास. स्वप्नवासवदत्तम् (व्या.). आचार्य जगदीश प्रसाद पाण्डेय. वाराणसी: भारतीय विद्याभवन, 1989.
6. लीलारावदयाल. बाल विधवा. मंजूषा: वर्ष–11, अंक 8, जून, 1955
7. लीलारावदयाल. वृत्तसंशिच्छत्रम्. मंजूषा: वर्ष 9, अंक 10, अप्रैल, 1957
8. लीलारावदयाल. नारकण्डाश्रम. दिव्यज्योति: अक्तूबर, 1980
9. शास्त्री, पट्टाभिराम. नवोढ़ावधूवरश्च. मुम्बई: देववाणी परिषद्
10. शास्त्री, व्यासराज. लीलाविलास. कलकत्ता: पण्डित विश्वेश्वर विद्या, काव्यतीर्थ
11. त्रिपाठी, कृष्णमणि. सावित्रीचरितम्. वाराणसी: संकटप्रेस, सीराकुआँ

[4]आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार– मीरा द्विवेदी, पृष्ठ 33

सहायक ग्रंथ (संस्कृत)

1. उपाध्याय, रामजी. आधुनिक संस्कृत नाटक भाग 1–2 सागर संस्कृत विश्वविद्यालय: प्रथम संस्करण
2. चक्रवाल, इन्द्रा. उपरुपकों का उद्भव एवं विकास वाराणसी विश्व विद्यालय प्रकाशन चौक: 1936
3. द्विवेदी, डॉ. कैलाशनाथ. कालिदास एवं भवभूति के नारी पात्र. कानपुर: 1994
4. द्विवेदी, डॉ. कैशलानाथ. संस्कृत कवियित्रियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व. लखनऊ: 1994
5. द्विवेदी, डॉ. मीरा. आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार. दिल्ली: शक्तिनगर, परिमल पब्लिकेशन, 1996.
6. शर्मा, डॉ गजानन्द एवं जीत मल्होत्रा. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी. रचना प्रकाशन: 1971
7. वेदालंकार, श्रीहरिदत्त. हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास. लखनऊ: हिन्दू समिति, सूचना विभाग, 1970

अंग्रेजी ग्रंथ

1. Kale, M.R. Svapnavasavadatta of Bhasa. Motilal Banarasidas: 2015.

RRIJM 2015, All Rights Reserved

Scanned with CamScanner
Scanned with OKEN Scanner

महाभारत के स्त्री संदर्भ एवं वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता

• **डॉ0 शारदा वर्मा**

भारतीय संस्कृति में नारी को शक्ति रूप में प्रतिष्ठित माना है। नारी शक्ति है तो नर शक्तिमान। ऋग्वेद में विदुषियों के रूप में नारी का योगदान भारतीय संस्कृति को गरिमा प्रदान करता है।

वेद द्वारा नारी को सर्वोच्च ब्रह्म की उपाधि दी गई है। "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"[1] शंकराचार्य सौन्दर्य लहरी में वर्णन करते हैं कि शक्ति के बिना शिव में स्पन्दन की भी सामर्थ्य नहीं रह जाती। वैदिक युगीन नारी को देवी विदुषी प्रकाशवती, दुहिता, कन्या, पत्नी, जननी, अध्यापिका, उपदेशिका आदि नामों से संबोधित किया गया हैं। मार्कण्डेय पुराण में[2] देवता जब असुरों से पराजित होते हैं तो देवी की शरण में जाते हैं– और स्तुति करते हुए कहते हैं कि देवी समस्त जगत् को व्याप्त करने वाली शक्ति है और सभी महिलाएँ उन्हीं का रूप हैं।

सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि वैदिक काल की तरह गृह्य सूत्रों में उसे सम्माननीय स्थान प्राप्त था परन्तु धर्म सूत्रों तक आते-आते परवर्ती साहित्य में उसके अधिकारों में अवनति स्पष्ट दिखाई देती है जिसका आरम्भ शतपथ बाह्मण से हो चला था। गौतम धर्मसूत्र में कहा है कि स्त्री धर्मानुष्ठान में अस्वतंत्र है–

"अस्वतंत्रा धर्मे स्त्री"

यदि यह कहें कि आधुनिक युग में स्त्री वर्ग के समान अधिकार पाने या महिला सशक्तिकरण के जो स्वर सुनाई देने लगे हैं उनके बीज हमें रामायण, महाभारत में मिलने लगते हैं तो गलत न होगा। रामायण में आए सीता परित्याग पसंग को कुछ आलोचकों का शिकार होना पड़ा चाहे उद्देश्य राजधर्म ही क्यों न हो। उद्देश्य के स्पष्टीकरण के लिए रामायण में ही आता है।[3] महाभारत में सभी विभिन्न विधाओं उन्नति अवनति की संभावनाओं, जीवन के प्रत्येक अंग को स्पर्श करने वाली मर्मभेदी घटनाओं, सामाजिक परिवेश, अध्यात्म दर्शन व तत्वज्ञान की गहराईयों के दर्शन होते हैं? इसीलिए महाभारत का विश्वकोष भी कहा गया है अनेक उक्तियाँ भी प्रचलित हुई–

'यद् न भारते तद् न भारते', यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्', व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।

महाभारत में नारी के तीन सौ से ज्यादा संदर्भ मिलते हैं जिनमें प्रमुखतया सत्यवती, गांधारी, कुन्ती, द्रौपदी का प्रभाव सम्पूर्ण महाभारत में स्पष्ट दिखाई देता है। महाभारत काल द्वंद्वात्मक समाज का प्रतिनिधित्व करता है। नारी के लिए यज्ञ कर्म, श्राद्ध, शिक्षा आदि की आवश्यकता नहीं थी पति सेवा से ही वह स्वर्ग लोक प्राप्ति का मार्ग कहा है। जहाँ एक ओर नारी को ब्रह्मा की पदवी दी गई है उसे देवी, दुर्गा, लक्ष्मी आदि के रूप में सम्मान दिया जाता है। लेकिन उस समय की सामाजिक स्थिति का अवलोकन करें तो पाते हैं कि उसे संस्कारों शिक्षा व स्वतंत्रता के अधिकारों से वंचित रखा गया। समाज में नैतिकता, दया, पवित्रता, संयम समाप्त होते जा रहे थे और विघटन आरम्भ हो गया था।

अनेक उदाहरणों से पता चलता है कि नारी समाज अधिकारों व सम्मान के लिए महाभारत काल से ही प्रयासरत है। नारी के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए महाभारत में वर्णित महत्वपूर्ण चरित्र सत्यवती को देखें तो पाते हैं कि उसका

• **एसोसिएट प्रोफेसर, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

कुशल प्रशासक के रूप में महत्वपूर्ण योगदान था। सत्यवती ने धीवर कन्या होने पर भी बड़ी कुशलता से कुरूवंश को आगे बढ़ाया। अपने वंश व राज्य के कारण महर्षि वेद व्यास से नियोग कराने का निर्णय कुशल राजनीतिज्ञ होने का अद्वितीय उदाहरण है। नीति वेत्ता विदुर भी भीष्म की माता सत्यवती की प्रशासनिक कुशलता से प्रभावित थे और प्रत्येक कार्य माता सत्यवती की आज्ञा से करते थे। इसी कारण वेद व्यास प्रशंसा करते हुए कहते हैं आप परापर दोनों धर्मों को जानने वाली है इसलिए मैं धर्म को दृष्टि में रखकर आपकी आज्ञा से कार्य करूँगा।[5] इससे ज्ञात होता है कि महारानी सत्यवती ने कुशल नीति वेता के रूप में कुरू वंश को गति प्रदान की। जबकि दूसरी ओर सत्यवती के पिता ने सामान्य मछुआरा होते हुए भी चक्रवर्ती प्रतापी राजा शान्तनु के सामने शर्म रखी और राजा ने उस मानकर विवाह किया परन्तु साथ-साथ जब पुत्र ने पिता की पीड़ा को जानकर सारा जीवन पितृ सेवा में लगा दिया तो ये पिता-पुत्र के स्नेह व आज्ञाकारिता का अप्रतिम उदाहरण तो हो सकता है परन्तु नारी के प्रति असम्मान तथा असंवेदनशीलता दिखाई देता है जो 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'[6] की अवहेलना करती प्रतीत होता है।

समाज व परिवार के लिए अपना सर्वस्व त्याग करन वाली गाँधार नरेश की पुत्री गांधारी अद्वितीय सुंदरी, शिक्षित संस्कारशील, धर्मपरायणा कौरव वंश की पुत्र वधु का आँख पर पट्टी बाँधना पतिव्रत धर्म का आदर्श उदाहरण हो सकता है क्योंकि उसके पति धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे परन्तु यह विचारणीय विषय है कि यदि वह आँख पर पट्टी नहीं बाँधती तो अपने पुत्रों के अंदर हीन भावना क्रोध व ईर्ष्या को जन्म ही न लेने देती और शायद महाभारत न होती, दूसरी तरफ कर्तव्य परायणता में धर्म व न्याय के लिए प्रयत्नशील रही अपने पुत्रों को कभी विजय का आशीर्वाद नहीं दिया हमेशा यही कहा कि जहाँ धर्म है, न्याय है वहीं विजय होगी। जब द्युतक्रीड़ा में पाण्डवों का सर्वस्व छीन लिया गया और भरी सभा में बड़े-बड़े कुलरक्षकों के सामने द्रौपदी को निर्वस्त्र किया जा रहा था सभी चुप थे ऐसे समय महारानी गांधारी ने विरोध कर धृतराष्ट्र द्वारा पांचाली को वर देकर उसी के द्वारा पाण्डवों को मुक्त कराकर उनका हारा हुआ धन लौटाने को कहा। इस प्रकार गांधारी के चरित्र की उदात्तता जो पति भक्ति की मूर्ति तथा धर्म के लिए प्रयत्नशील रही नारी की सशक्तता का अप्रतिम उदाहरण है।

इसी प्रकार शूरसेन की पुत्री कुन्ती जिसे दुर्वासा ऋषि से अमोघ शक्ति प्राप्त थी कि वह जिस देवता का आवाहन करेगी वह उसकी कामना पूर्ण करेंगे। भगवान सूर्यदेव से वह कौमार्यावस्था मं ही स्वर्णिम कवच कुण्डल वाले अप्रतिम वीर योद्धा को जन्म देती है परन्तु भयवश उसे यमुना नदी में बहा देती है और वह संतान बड़ी होकर सूत-पुत्र कहलाता है। यही त्रुटि आगे जाकर महासंग्राम का कारण बनती है। कुन्ती के द्वारा और अन्याय हुआ जब अर्जुन के कौशल से ही पाञ्चालराज द्रुपद की पुत्री द्रौपदी को स्वयंवर से वरण किया गया था। उसे अर्जुन ने मत्स्यवेध करके प्राप्त किया था वहीं पर द्रौपदी के द्वारा कर्ण को सूत पुत्र कहकर अपमानित किया जाना इसके बाद जब अर्जुन द्रौपदी को लेकर निवास स्थान पर पहुँचते हैं और कुन्ती के द्वारा प्रत्युतर में यह कहना कि जो भी लाए हो उसका तुम सब मिलकर उपभोग करो। जिससे द्रौपदी पाँचों पांडवों की पत्नी बनी। एक नारी के लिए मर्मान्तक शब्द पांच पतियों की पत्नी तथा अनेक भोग्या आदि घटनाएँ जो पाण्डवां के लिए घोर अपमान व विद्वेष का कारण बने। कुन्ती व गांधारी के चरित्र व उदात्तता की तुलना करें तो गांधारी अधिाक गंभीर व उदात्त स्वभाव की थी। युधिष्ठिर द्वारा क्षत्रिय राजधर्म के नाम पर अपना सर्वस्व दाँव पर लगाने के बाद अपनी पत्नी को वस्तु मानकर जुए में दाँव पर लगाना नारी के प्रति असम्मान दर्शाता है। जबकि नारी ने अनादिकाल से अब तक पुरुष को ही नहीं सारे समाज को पोषण दिया है भूमि बिना कोई बीज वृक्ष नहीं बन सकता। वैदिक युग में नारी महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, मैत्रेयी, अनुसूया आदि ऋषि पत्नियों के रूप में वंदनीय रही तो दूसरी ओर नारी के प्रति अपमानजनक व

संकीर्णतावादी कुण्ठाग्रस्त दृष्टिकोण भी दिखाई देता है। गांधारी, कुन्ती, द्रौपदी, शकुंतला सशक्त व्यक्तित्व की स्वामिनी अनेक नारियों के त्याग, बलिदान, शौर्य, साहस से पूर्ण अनेक उदाहरण संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध हैं।

भगवान शिव को शक्ति के बिना स्पन्दन हीन माना है- संसार की सारी नारी शक्ति देवी का ही रूप है ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि जब देवता असुरों से पराजित होते हैं तो देवी की शरण में जाते हैं, महाभारत की भी नारी गरिमामयपूर्ण व्यक्तित्व के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मं प्रमुख भूमिका में रही है नारी के अनेक आयामों व पुरुषों के आचरणों व स्वच्छंद अहंकारी व्यक्तित्व के कारण सम्पूर्ण मानव जाति को विकट परिणाम झेलने पड़े। जबकि नारी 'प्रेममयी, भगवती व ब्रह्मा की उपाधि से युक्त है। इसके कारण नारियों ने अपना सशक्त व्यक्तित्व को कहीं मूक तो कहीं मुखर होकर प्रदर्शित किया है यह कहीं महत्वाकांक्षा से प्रेरित है तो कहीं विषम सामाजिक परिस्थिति से उत्प्रेरित। कहीं न कहीं समाज को इससे अवगत होना होगा कि उसके कर्त्तव्य ही नहीं है अधिकार भी है सशक्त नारी ही अच्छे परिवार, समाज व विश्व का निमाण कर सकती है।

संदर्भ सूची-

1. ऋग्वेद 8/33/19
2. मार्कण्डेय पुराण-
   विद्या समस्तास्तव देवि भेदा:स्त्रिय:समस्ता:सकला:जगत्सु।
   त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुति: स्तव्यपरा परोक्ति:।।
3. स्नेह दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
   आराधनाय लोकस्यमुत्र्चतो नास्ति में व्यथा।।
4. धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
   यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्।।महा. 1.1.1.1
5. महा. - 104.39-40
6. मनु. - 3/56
   यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
   यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।

❖

आधुनिक संस्कृत वांङ्मय में नारी की शक्ति और सामर्थ्य

• **डॉ0 शारदा वर्मा**

आधुनिक संस्कृत वाङ्मय में रचनाकारों ने प्राचीन और नवीन का संगम करते हुए परिवर्तन की इस प्रक्रिया में वर्तमान मूल्यों का समावेश मुखर होकर किया है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए उनकी रचनाओं में नए मूल्यों का समावेश तथा नारी के प्रति संवेदना नारी चेतना को अभिव्यक्त करती है परन्तु फिर भी अधिकतर रचनाकार आदर्शवादी व समाज के रूढ़िवादी सोच से लिप्त दिखाई देते हैं।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य में परम्परा और आधुनिकता के पारस्परिक द्वंद्व के कई पक्ष स्पष्ट दिखाई देते हैं। 20वीं शताब्दी के पहले दशक में आधुनिकता और नई सभ्यता के प्रति प्रशंसा और स्वागत का भाव है तो दूसरे दशक में उपहास के स्वर भी मिलते हैं। यद्यपि आधुनिक संस्कृत साहित्य में क्षमाराव, लीलाराव, कमलारत्नम्, वनमाला भवालकर, नलिनीशुक्ला, रमाचौधुरी, मिथिलेश कुमारी मिश्रा, पुष्पा दीक्षित, वीणामणिपाटनी आदि महिला रचनाकारों ने योगदान दिया है यहाँ पर पुरुष रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं में जहाँ-जहाँ नारो के प्रति संवेदना व्यक्त की है उनको भी यहाँ उद्धृत किया है।

संस्कृत विद्वानों में अग्रणी शंकर पाण्डुरंग की पुत्रो क्षमाराव ने मीरा लहरी काव्य में नारी हृदय के समर्पण, आस्था और सामाजिक विसंगतियों के प्रति विरोध के भाव की अभिव्यक्ति की है। मीरा का प्रेम में डूब जाना और भाव विह्वल दशा का चित्रण मार्मिक शब्दों में किया है। ऐसा लगता है मानो मीरा के रूप में अपने चरित्र को साधा हो।[1] क्षमाराव की रचनाओं में नायिकाएँ समाज की संकीर्ण सोच के कारण मानसिक पीड़ा से व्यथित है। इनकी रचनाओं में कथामुक्तावली व कथापंचकम् में बालवैधव्य, विधवापुनर्विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। इसमें ही गाँव के लोगों की व्यथा तथा विधवा जीवन की विडम्बना का चित्रण बड़ी प्रमाणिकता व नए सामाजिक संदर्भों क साथ पहली बार संस्कृत साहित्य में किया गया प्रतीत होता है। वहीं 'ग्रामज्योति' में नायिकायें न केवल स्थानीयस्तर पर स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों का नेतृत्व अपितु सशक्त, देशभक्ति और साहसपूर्ण कार्यों का नेतृत्व करती दिखाई देती है।

सांस्कृतिक चेतना के धनी रामकरणशर्मा ने परम्परा व आधुनिकता का अपनी कविता 'रसद्वारम्' में दूध पिलाने को व्याकुल माँ पिपासु शिशु का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है।[2]

जननी व्यग्राऽलिन्देविलपति ममतामयी क्वाचित् कोणे।
स्तन्यं शिशुः पिपासुर्विलपति चाऽन्तः पुरे तस्या।
ऋन्दनरवोऽपि भूयः शिशोः समायाति कर्ण पथमस्याः।
निषर्तते साद्वारात् प्रतिक्षणं श्वसितवृत्तिरिव॥

राजेन्द्रमिश्र जी जिनकी रचनाओं में वैयक्तिक अनुभव तथा समकालीन समाज, पौराणिक आख्यान और उनकी नई

• **एसोसिएट प्रोफेसर, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

व्याख्यायें परंपरा और आधुनिकता का संगम देखने को मिलता है। उन्होंने मध्यमवर्गीय समान का यथार्थ प्रस्तुत करती हुई 'इक्षुगंधा' में संकलित 'शतपर्विका' कहानी में सात बेटियों वाले पिता की दोहरी मानसिकता का वास्तविक चित्रण किया है।[3] वह अपने इकलौते निकम्मे पुत्र से बहुत स्नेह करता है पर सुशील, सेवापरायण बेटियों से परायों का सा व्यवहार करता है। अंत में बेटिया अपने सेवा भाव व सदाचरण से पिता का हृदय बदल देती है। समाज में घटित होने वाली ऐसी घटनाओं से प्रतीत होता है कि वास्तविक रूप पुरुषों को शिक्षित होने की जरूरत है ऐसी नैतिक शिक्षा जो उनकी पुरुष प्रधान संकुचित मानसिकता को बदल सके और उनके अंदर नारी के प्रति वो सम्मान व समानता की सोच को जागृत कर सके।

हरिदत्त पालीवाल निर्भय 'अमृतलता' में सामाजिक विषमता को लेकर प्रतिकार प्रदर्शित करते हैं और कहते हैं श्रमिक भूखे व प्यासे हैं माँ–बहनों का शीलहरण हो रहा है बच्चे दाने–दाने को तरसते हैं देश की स्थिति में बदलाव कहाँ आया है। प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने उत्तररामचरित (1990 ई.) में आर्य संस्कृति की प्रतीक सीता को राष्ट्रदेवी के रूप में वर्णित करते हुए कहा है कि उनके राम सीता का परित्याग नहीं करते वरन् सीता स्वयं प्रजा के कल्याण के लिए राजप्रसाद छोड़ने का संकल्प करती है। सीता अपने संकल्प, त्याग और नैतिक मूल्यों से जिन तेजस्वी पुत्रों का चरित्र निर्माण कराती है लेखक उनमें राष्ट्र का भविष्य देखता है। सीता सामाजिक व पारिवारिक अपवाद सहती है परन्तु विचलित नहीं होती।[4] इसमें नारी के प्रति संवेदनात्मक दृष्टि रखते हुए उसका सशक्त रूप दिखाया है। डॉ. गोस्वामी बलभद्रप्रसाद शास्त्री द्वारा रचित 'इन्दिराजीवनम्' में भारत पाकिस्तान युद्ध के समय अपने अदम्य साहस के बल पर 'रणचण्डी' बन देश को संबोधित करते हुए कहती है शत्रु को 'दुर्मदान्धा:'[5] कहते हुए उसके अपराध को अक्षम्य मानती है। इस महाकाव्य में इन्दिरा व कमला को महात्वाकांक्षी, लोकहित में तत्पर, दृढ़प्रतिज्ञ कुशल प्रशासिका व सशक्त नारी के रूप में चित्रित किया है।

परमानन्द शास्त्री के 'चीरहरण' महाकाव्यम्' में द्रौपदी के चीरहरण की कथा है।[6] इसमें द्रौपदी सामाजिक विषमताओं में पीसती आज की नारी को वर्णित किया है। इसमें ईश्वरीय तत्व की उपस्थिति न दिखाकर बुद्धिवादी व्याख्या की है। जिसमें कृष्ण अपने राजनीतिक चातुर्य व कूट बुद्धि से दुशासन को धमकाते हुए द्रौपदी के साथ होने वाले अनर्थ को दूर करते है। इनके दूसरे ग्रंथ "कौन्तेयम्" खण्डकाव्य में भारतीय नारी की विवशता पुरुष के द्वारा किया जाने वाला छद्म व्यवहार व शोषण पर कटाक्ष किया है– "नव नवाहि नारी शोषण कथा अनन्ता:।"

इसी प्रकार कशवचन्द्रदास के साहित्य में 'शिखा' नामक उपन्यास में आधुनिकता के नाम पर बढ़ती हुई भोगलिप्सा और संग्रह प्रवृति का विरोध किया है। 'ओम शान्ति' उपन्यास में आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर संस्कारहीन पुत्री के व्यवहार के कारण पिता के दुख का सजीव वर्णन किया है।

प्रगतिशील विद्वानों में ईश्वरचन्द्रविद्यासागर (1854 ई.) द्वारा 'विधवा विवाह' रामनारायण तर्क रन्त ने 'कुलीन सर्वस्व' नामक नाटक में कुल रमणियों की दुर्दशा का चित्रण, श्यामचरण ने बाल विवाह पर 'बालोद्वाह' (1860 ई.) नामक नाटक विहारीलाल नन्दी ने 'विधवापरिणयोत्सव' (1857 ई.) की रचना कर विधवा विवाह का प्रबल समर्थन किया है नारी हृदय की मर्मांतक वेदना, अन्याय के विरूद्ध संघर्ष को 20 शती की महिलाओं ने अपनी कृतियों में मुखरित किया है उनमें प्रमुख हैं डॉ. नलिनी शुक्ला, महाश्वेता चतुर्वेदी, डॉ. देवकी मेनन, डॉ. कमला रत्नम, डॉ. वीणामणि पाटनी, डॉ. पुष्पा दीक्षित आदि।

डॉ. पुष्पा दीक्षित ने 'अग्नि शिखा' नामक गीति संग्रह में नारी हृदय की करुणा, कोमलता तथा प्रेम की अनिर्वचनीय तन्मयता का वर्णन इस प्रकार किया है।[7]

"न वर्णैस्तद्वर्ण्यं प्रिय यदनुभूतं हृदिमया.....
क्षमो नो क्षन्ता वा विशकलितमेतत्कलायितुम्।।"

राजेन्द्र नानावटी के एक मात्र काव्य संग्रह मरीचिका (1993 ई.) में आधुनिक जीदवन की मरीचिका का वर्णन करते दर्शाया है कि किस प्रकार आज के युग में प्रेम और दाम्पत्य निष्ठा की भावनाएं समाप्त हो रही हैं आज का मानव आपाधापी व निरर्थक भाग दौड़ की जिंदगी जी रहा है इस प्रकार पिछले कुछ दशकों के संस्कृत काव्य में परम्परा की गतिशीलता के साथ-साथ नई प्रवृतियों का अंगीकार स्पष्ट दिखाई देता है।

राष्ट्रीय स्तर पर भी देखें तो ऐसा कौन-सा क्षेत्र है जहाँ महिलाएँ आगे नहीं आई इन्दिरा गाँधी, मदर टेरेसा, कल्पना चावला, किरण बेदी, तसलीमा नसरीन, इस कारपोरेट दौर में पेप्सिको की इन्दिरानुई आदि महिलाएँ बड़े प्रभावी ढंग से समाज की तस्वीर बदल रही है परन्तु फिर भी सामान्य स्तर पर स्त्रो के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। भारतीय समाज में पुत्रमोह के कारण जन्मी व अजन्मी कन्याओं की हत्याओं का अनवरत सिलसिला आज भी जारी है। जिस समाज में गर्भ में आई कन्या की हत्या की जाए तथा त्यौहार के समय पूजा जाए, उसकी अस्मिता का हनन किया जाए, ऐसे समाज को रूढ़िवादिता से मुक्त करा वास्तविकता से अवश्य अवगत होना चाहिए। ऐसे समाज को वेद द्वारा नारी को जो सर्वोच्च ब्रह्मा की उपाधि दी गई है-

"स्त्रो हि ब्रह्मा बभूविथ" ऋग्वेद 8/33/19 से अवश्य अवगत होना चाहिए।

तात्विक दृष्टि से भी देखें तो नर और नारी देह भेद मात्र है- "न त्वं स्त्री न पुमान् असि, न कुमार उत वा कुमारी" आत्मलिङ्ग ही है आत्मा की समस्त शक्ति स्त्रीलिंग में ही वर्णित हुई है- "देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढ़ाम्"।

यह सामाजिक विडम्बना नहीं तो क्या है कि नारी को परस्पर विरोधी सामाजिक विचारों के बीच जीने को बाध्य होना पड़ता है। एक तरफ परम्परागत संस्कारों में जकड़ा समाज जो आज भी लड़की को शिक्षित करना जरूरी नहीं समझता, वात्सल्य की मूर्ति के रूप में देखना चाहता है दूसरी तरफ सही अर्थों में अर्धांगिनी तथा आर्थिक क्षेत्र में सहायिका बने इन्हीं परस्पर विरोधी विचारों के मेल को नारी पर लादकर उस पर स्वार्थी व हृदयहीन होने के आरोप भी लगाए जाते हैं यद्यपि सभी इस बात से परिचित हैं कि महिलाएं ही घर व बाहर संभालते हुए दोहरी भूमिका बहुत अच्छी प्रकार से निभा रही है प्रकृति ने भले ही उसे कोमल बनाया है परन्तु उसमें संकल्पशक्ति, संवेदना, सहनशक्ति, दृढ़इच्छाशक्ति आदि गुणों के कारण वह घर की चार दीवारी से बाहर आकर बहुत अच्छे ढंग से पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है इसलिए आवश्यक है कि समाज स्त्रो-पुरुष का भेद-भाव समाप्त कर अपनी संकुचित मानसिकता त्याग दें यदि इन्हें भी समान व्यवहार व समान अवसर दिए जाए, पूर्ण शिक्षित किया जाए तो वह भी बड़ी से बड़ी चुनौतियों का सामना कर सकती है जैसे कहा जाता है प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे स्त्री का हाथ होता है उसी प्रकार एक सफल स्त्री के पीछे भी पुरुष का हाथ हो, चाहे वह पिता के रूप में हो, भाई के रूप में पति व पुत्र के रूप में। तभी एक सभ्य व सुस्कृंत समाज की रचना हो सकती है जिससे स्त्री भी समाज में पारिवारिक व सामाजिक संतुलन बनाए रखते हुए तेजो से आगे बढ़ सके। स्त्रियों के लिए भी आवश्यक है कि वे पारम्परिक मूल्यों,

संस्कृति, नैतिकता व नारी सुलभ गुणों को न त्यागते हुए आगे बढ़े। स्त्री पुरुष एक साथ मिलकर ही एक बेहतर समाज का निर्माण कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ-

1. दीना पाहि विभो त्वमेव शरणं नान्यः शरण्योऽस्ति में पाथ्यैर्वं विनता प्रजातपुलका प्रोद्वीक्ष्य मूर्तेमुखम्। मीरा लहरी – प. क्षमाराव, निर्णयसागर, प्रेस बाम्बे 1944
2. दीपिका, पृ. 125-20
3. इक्षुगन्धा (कथा संग्रह) राजेन्द्रमिश्र, वैजयन्तप्रकाशन, राँची, 1986
4. सुते! विधौ वामविधायिनि व्रंत सुताय में स्निग्धमनानयाऽत्यजः।
   पतिव्रतानामभिरक्षितत्रपा त्वमेव वन्द्याऽसि ममैव साधुना।
   त्वयोन्नतं दाशरथं शिरोऽद्यतत् त्वया प्रकाशोऽन्वय एषभास्वतः।
   त्वयाऽस्ति पूताननुमानवी मही त्वसा सगर्वं श्वलु राष्ट्रमस्ति नः।।
   रेवा प्रसाद द्विवेदी – उत्तरसीताचरितम् 1-16, 20
   कालिदास संस्थान वाराणसी, 1990
5. दग्ध्वा स्वगेहं स्वयमग्निदाहैः ततो ज्वलन् यः प्रतिवेशिसद्म।
   दग्धुं प्रमत्तोऽयतताततायी, क्षम्यो भवेन्नैवसदुर्मदान्धाः।।
   डॉ. गोस्वामी बलभद्रप्रसाद शास्त्री – इन्दिराजीवनम्
6. चोरहरणम् महाकाव्यम्, परमानन्दशास्त्री, अलीगढ़
   देवासुरनरगन्धर्वदनुजजातीनां, निर्वेशिष्ट्यं सा सभाप्रकृतिराद्यन्तां।
   प्रामभवत् सम्प्रतिभवति भविष्यति भूयो, नवनवाहिनारी शोष्णण कथाः अनन्ताः।
7. इयमग्नि शिखा ज्वलिता सहसैव कथं हृदये। अग्निशिखा हृदयगतम्, पृ. 7

❖

International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(6): 81-83

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(6): 81-83
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-09-2020
Accepted: 24-10-2020

दीपक कालिया
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (प्रातः), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
दीपक कालिया
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (प्रात:)

आधुनिक काव्य "सत्यम्" में सत् चित् आनन्द

दीपक कालिया

प्रस्तावना

आधुनिक संस्कृत काव्य "सत्यम्" आधुनिक संस्कृत जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो. रसिक विहारी जोशी की कृति है। इसकी रचना सन् 2006–2007 में हुई एवं प्रकाशन 2007 में हुआ। काव्य में 503 पद्य हैं जिनमें कवि ने अपने अनुभवों के आधार पर "सत्य" को प्रकाशित किया है। कवि का मुख्य उददेश्य "जीवन" को त्रिविध तापों से मुक्त कर सुखमय बनाने का पथ प्रदर्शन करना है। दर्शन में सत् चित् आनन्द तो साधक को कठिन तप द्वारा प्राप्त होता है इस सत् चित् आनन्द हेतु सर्वप्रथम अधिकारी के गुणों से युक्त होने की आवश्यकता है परन्तु इस काव्य में कवि ने व्यवहारिक रूप से सत् चित् आनन्द की प्राप्ति के उपायों का वर्णन किया है। मानव को अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए सर्वप्रथम सत्य मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। परिवार एवं समाज में परिजनों एवं मित्रों के प्रति शुभकामना संदेश एवं अभिवादन से ही चित् प्रसन्न हो जाता है। छोटे–छोटे शिष्टाचार द्वारा ही अपने मन को प्रसन्न कर हम आनन्दानुभूति कर सकते हैं। इन्हीं व्यवहारिक आचरणों पर विशेष बल देते हुए कवि ने काव्य में सत् चित् आनन्द के व्यवहारिक स्वरूप को स्पष्ट किया है।
आनन्दानुभूति के विषय में कवि लिखते हैं–

कुरु कुरु तव चित्तं निर्मलप्रेमपूर्णम्।
स्फुरतु स्फुरतु सत्यं शुद्धचित्तं प्रसन्नम्।। श्लोक (364)

प्रस्तुत शोधपत्र में सत् चित् आनन्द के दार्शनिक दृष्टि से स्वरूप का तथा काव्य में वर्णित व्यवहारिक दृष्टि से सत् चित् आनन्द के स्वरूप का तुलनात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

दार्शनिक दृष्टि से सत् चित् आनन्द का स्वरूप

अद्वैतमतानुसार सत् शब्द सत्तार्थक भाववचन है। अस् भुवि धातु से शतृ प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार इसका अर्थ है जो विद्यमान है। त्रिकालबाधित वस्तु ही अर्थात् नाम देश और कालादि का नाश होने पर भी जिसका नाश नहीं होता है, वही सत् है। अद्वैतमत में ब्रह्म का स्वरूप लक्षण बताते हुए उसे सत् स्वरूप कहा है। उपनिषदों में ब्रह्म को पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है और कहा है कि ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरी कोई सत्ता नहीं है।[1] उस सत्य ब्रह्म का नाम भी सत् ही है।[2] यद्यपि ब्रह्म शब्द का प्रयोग सभी स्थलों पर अध्यात्मपरक नहीं है, पर जहां भी इसका अध्यात्मपरक अर्थ है वहां यह सर्वोच्च सत् रूप में वर्णित है।[3]
आदिगुरू शंकराचार्य ने तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य में सत् शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि जिस रूप से जो पदार्थ निश्चित होता है, अनुभूति का विषय बनता है, यदि वह उस रूप को न त्यागे तो वह पदार्थ सत् कहलाता है।[4] जो वस्तु नित्य है वही सत्य भी है। जो सत् है वह आत्मा ही है। उसी से समस्त जगत् की सत्ता है। वही परमार्थ सत् है। इसी प्रकार ब्रह्म को सामान्य कहा है। सामान्य से तात्पर्य सत् ही है।[5] स्वामी विद्यारण्य ने पंचदशी में सत्य होने का अर्थ बाध से रहित होना कहा है।[6] बाध का शाब्दिक अर्थ निषेध। जिसका कभी भी निषेध न हो सके, ऐसी वस्तु ब्रह्म ही है।
रामानुजाचार्य भी यद्यपि ब्रह्म को सत् मानते है परन्तु वे सत् ब्रह्म का गुण मानते हुए ब्रह्म को सविशेष बताते हैं। सत् शब्द का अर्थ अद्वितीय करते हुए कहा गया है कि जो पूर्णतया निरूपाधिक एक है वह सत् है।[7]

चित्– चित् शब्द "चिति संज्ञाने" धातु से क्विप् प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है चेतन

आधुनिक संस्कृत वांङ्मय में नारी की शक्ति और सामर्थ्य

• **डॉ0 शारदा वर्मा**

आधुनिक संस्कृत वाङ्मय में रचनाकारों ने प्राचीन और नवीन का संगम करते हुए परिवर्तन की इस प्रक्रिया में वर्तमान मूल्यों का समावेश मुखर होकर किया है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए उनकी रचनाओं में नए मूल्यों का समावेश तथा नारी के प्रति संवेदना नारी चेतना को अभिव्यक्त करती है परन्तु फिर भी अधिकतर रचनाकार आदर्शवादी व समाज के रूढ़िवादी सोच से लिप्त दिखाई देते हैं।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य में परम्परा और आधुनिकता के पारस्परिक द्वंद्व के कई पक्ष स्पष्ट दिखाई देते हैं। 20वीं शताब्दी के पहले दशक में आधुनिकता और नई सभ्यता के प्रति प्रशंसा और स्वागत का भाव है तो दूसरे दशक में उपहास के स्वर भी मिलते हैं। यद्यपि आधुनिक संस्कृत साहित्य में क्षमाराव, लीलाराव, कमलारत्नम्, वनमाला भवालकर, नलिनीशुक्ला, रमाचौधुरी, मिथिलेश कुमारी मिश्रा, पुष्पा दीक्षित, वीणामणिपाटनी आदि महिला रचनाकारों ने योगदान दिया है यहाँ पर पुरुष रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं में जहाँ-जहाँ नारो के प्रति संवेदना व्यक्त की है उनको भी यहाँ उद्धृत किया है।

संस्कृत विद्वानों में अग्रणी शंकर पाण्डुरंग की पुत्रो क्षमाराव ने मीरा लहरी काव्य में नारी हृदय के समर्पण, आस्था और सामाजिक विसंगतियों के प्रति विरोध के भाव की अभिव्यक्ति की है। मीरा का प्रेम में डूब जाना और भाव विह्वल दशा का चित्रण मार्मिक शब्दों में किया है। ऐसा लगता है मानो मीरा के रूप में अपने चरित्र को साधा हो।[1] क्षमाराव की रचनाओं में नायिकाएँ समाज की संकीर्ण सोच के कारण मानसिक पीड़ा से व्यथित है। इनकी रचनाओं में कथामुक्तावली व कथापंचकम् में बालवैधव्य, विधवापुनर्विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। इसमें ही गाँव के लोगों की व्यथा तथा विधवा जीवन की विडम्बना का चित्रण बड़ी प्रमाणिकता व नए सामाजिक संदर्भों क साथ पहली बार संस्कृत साहित्य में किया गया प्रतीत होता है। वहीं 'ग्रामज्योति' में नायिकायें न केवल स्थानीयस्तर पर स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों का नेतृत्व अपितु सशक्त, देशभक्ति और साहसपूर्ण कार्यों का नेतृत्व करती दिखाई देती है।

सांस्कृतिक चेतना के धनी रामकरणशर्मा ने परम्परा व आधुनिकता का अपनी कविता 'रसद्वारम्' में दूध पिलाने को व्याकुल माँ पिपासु शिशु का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है।[2]

जननी व्यग्राऽलिन्देविलपति ममतामयी क्वाचित् कोणे।
स्तन्यं शिशुः पिपासुर्विलपति चाऽन्तः पुरे तस्या।
ऋन्दनरवोऽपि भूयः शिशोः समायाति कर्ण पथमस्याः।
निषर्तते साद्वारात् प्रतिक्षणं श्वसितवृत्तिरिव॥

राजेन्द्रमिश्र जी जिनकी रचनाओं में वैयक्तिक अनुभव तथा समकालीन समाज, पौराणिक आख्यान और उनकी नई

• **एसोसिएट प्रोफेसर, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

व्याख्यायें परंपरा और आधुनिकता का संगम देखने को मिलता है। उन्होंने मध्यमवर्गीय समान का यथार्थ प्रस्तुत करती हुई 'इक्षुगंधा' में संकलित 'शतपर्विका' कहानी में सात बेटियों वाले पिता की दोहरी मानसिकता का वास्तविक चित्रण किया है।[3] वह अपने इकलौते निकम्मे पुत्र से बहुत स्नेह करता है पर सुशील, सेवापरायण बेटियों से परायों का सा व्यवहार करता है। अंत में बेटिया अपने सेवा भाव व सदाचरण से पिता का हृदय बदल देती है। समाज में घटित होने वाली ऐसी घटनाओं से प्रतीत होता है कि वास्तविक रूप पुरुषों को शिक्षित होने की जरूरत है ऐसी नैतिक शिक्षा जो उनकी पुरुष प्रधान संकुचित मानसिकता को बदल सके और उनके अंदर नारी के प्रति वो सम्मान व समानता की सोच को जागृत कर सके।

हरिदत्त पालीवाल निर्भय 'अमृतलता' में सामाजिक विषमता को लेकर प्रतिकार प्रदर्शित करते हैं और कहते हैं श्रमिक भूखे व प्यासे हैं माँ–बहनों का शीलहरण हो रहा है बच्चे दाने–दाने को तरसते हैं देश की स्थिति में बदलाव कहाँ आया है। प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने उत्तररामचरित (1990 ई.) में आर्य संस्कृति की प्रतीक सीता को राष्ट्रदेवी के रूप में वर्णित करते हुए कहा है कि उनके राम सीता का परित्याग नहीं करते वरन् सीता स्वयं प्रजा के कल्याण के लिए राजप्रसाद छोड़ने का संकल्प करती है। सीता अपने संकल्प, त्याग और नैतिक मूल्यों से जिन तेजस्वी पुत्रों का चरित्र निर्माण कराती है लेखक उनमें राष्ट्र का भविष्य देखता है। सीता सामाजिक व पारिवारिक अपवाद सहती है परन्तु विचलित नहीं होती।[4] इसमें नारी के प्रति संवेदनात्मक दृष्टि रखते हुए उसका सशक्त रूप दिखाया है। डॉ. गोस्वामी बलभद्रप्रसाद शास्त्री द्वारा रचित 'इन्दिराजीवनम्' में भारत पाकिस्तान युद्ध के समय अपने अदम्य साहस के बल पर 'रणचण्डी' बन देश को संबोधित करते हुए कहती है शत्रु को 'दुर्मदान्धा:'[5] कहते हुए उसके अपराध को अक्षम्य मानती है। इस महाकाव्य में इन्दिरा व कमला को महात्वाकांक्षी, लोकहित में तत्पर, दृढ़प्रतिज्ञ कुशल प्रशासिका व सशक्त नारी के रूप में चित्रित किया है।

परमानन्द शास्त्री के 'चीरहरण' महाकाव्यम्' में द्रौपदी के चीरहरण की कथा है।[6] इसमें द्रौपदी सामाजिक विषमताओं में पीसती आज की नारी को वर्णित किया है। इसमें ईश्वरीय तत्व की उपस्थिति न दिखाकर बुद्धिवादी व्याख्या की है। जिसमें कृष्ण अपने राजनीतिक चातुर्य व कूट बुद्धि से दुशासन को धमकाते हुए द्रौपदी के साथ होने वाले अनर्थ को दूर करते है। इनके दूसरे ग्रंथ "कौन्तेयम्" खण्डकाव्य में भारतीय नारी की विवशता पुरुष के द्वारा किया जाने वाला छद्म व्यवहार व शोषण पर कटाक्ष किया है– "नव नवाहि नारी शोषण कथा अनन्ता:।"

इसी प्रकार कशवचन्द्रदास के साहित्य में 'शिखा' नामक उपन्यास में आधुनिकता के नाम पर बढ़ती हुई भोगलिप्सा और संग्रह प्रवृति का विरोध किया है। 'ओम शान्ति' उपन्यास में आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर संस्कारहीन पुत्री के व्यवहार के कारण पिता के दुख का सजीव वर्णन किया है।

प्रगतिशील विद्वानों में ईश्वरचन्द्रविद्यासागर (1854 ई.) द्वारा 'विधवा विवाह' रामनारायण तर्क रन्त ने 'कुलीन सर्वस्व' नामक नाटक में कुल रमणियों की दुर्दशा का चित्रण, श्यामचरण ने बाल विवाह पर 'बालोद्वाह' (1860 ई.) नामक नाटक विहारीलाल नन्दी ने 'विधवापरिणयोत्सव' (1857 ई.) की रचना कर विधवा विवाह का प्रबल समर्थन किया है नारी हृदय की मर्मांतक वेदना, अन्याय के विरूद्ध संघर्ष को 20 शती की महिलाओं ने अपनी कृतियों में मुखरित किया है उनमें प्रमुख हैं डॉ. नलिनी शुक्ला, महाश्वेता चतुर्वेदी, डॉ. देवकी मेनन, डॉ. कमला रत्नम, डॉ. वीणामणि पाटनी, डॉ. पुष्पा दीक्षित आदि।

डॉ. पुष्पा दीक्षित ने 'अग्नि शिखा' नामक गीति संग्रह में नारी हृदय की करुणा, कोमलता तथा प्रेम की अनिर्वचनीय तन्मयता का वर्णन इस प्रकार किया है।[7]

"न वर्णैस्तद्वर्ण्यं प्रिय यदनुभूतं हृदिमया.....
क्षमो नो क्षन्ता वा विशकलितमेतत्कलायितुम्।।"

राजेन्द्र नानावटी के एक मात्र काव्य संग्रह मरीचिका (1993 ई.) में आधुनिक जीदवन की मरीचिका का वर्णन करते दर्शाया है कि किस प्रकार आज के युग में प्रेम और दाम्पत्य निष्ठा की भावनाएं समाप्त हो रही हैं आज का मानव आपाधापी व निरर्थक भाग दौड़ की जिंदगी जी रहा है इस प्रकार पिछले कुछ दशकों के संस्कृत काव्य में परम्परा की गतिशीलता के साथ-साथ नई प्रवृतियों का अंगीकार स्पष्ट दिखाई देता है।

राष्ट्रीय स्तर पर भी देखें तो ऐसा कौन-सा क्षेत्र है जहाँ महिलाएँ आगे नहीं आई इन्दिरा गाँधी, मदर टेरेसा, कल्पना चावला, किरण बेदी, तसलीमा नसरीन, इस कारपोरेट दौर में पेप्सिको की इन्दिरानुई आदि महिलाएँ बड़े प्रभावी ढंग से समाज की तस्वीर बदल रही है परन्तु फिर भी सामान्य स्तर पर स्त्रो के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। भारतीय समाज में पुत्रमोह के कारण जन्मी व अजन्मी कन्याओं की हत्याओं का अनवरत सिलसिला आज भी जारी है। जिस समाज में गर्भ में आई कन्या की हत्या की जाए तथा त्यौहार के समय पूजा जाए, उसकी अस्मिता का हनन किया जाए, ऐसे समाज को रूढ़िवादिता से मुक्त करा वास्तविकता से अवश्य अवगत होना चाहिए। ऐसे समाज को वेद द्वारा नारी को जो सर्वोच्च ब्रह्मा की उपाधि दी गई है-

"स्त्रो हि ब्रह्मा बभूविथ" ऋग्वेद 8/33/19 से अवश्य अवगत होना चाहिए।

तात्विक दृष्टि से भी देखें तो नर और नारी देह भेद मात्र है- "न त्वं स्त्री न पुमान् असि, न कुमार उत वा कुमारी" आत्मलिङ्ग ही है आत्मा की समस्त शक्ति स्त्रीलिंग में ही वर्णित हुई है- "देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढ़ाम्"।

यह सामाजिक विडम्बना नहीं तो क्या है कि नारी को परस्पर विरोधी सामाजिक विचारों के बीच जीने को बाध्य होना पड़ता है। एक तरफ परम्परागत संस्कारों में जकड़ा समाज जो आज भी लड़की को शिक्षित करना जरूरी नहीं समझता, वात्सल्य की मूर्ति के रूप में देखना चाहता है दूसरी तरफ सही अर्थों में अर्धांगिनी तथा आर्थिक क्षेत्र में सहायिका बने इन्हीं परस्पर विरोधी विचारों के मेल को नारी पर लादकर उस पर स्वार्थी व हृदयहीन होने के आरोप भी लगाए जाते हैं यद्यपि सभी इस बात से परिचित हैं कि महिलाएं ही घर व बाहर संभालते हुए दोहरी भूमिका बहुत अच्छी प्रकार से निभा रही है प्रकृति ने भले ही उसे कोमल बनाया है परन्तु उसमें संकल्पशक्ति, संवेदना, सहनशक्ति, दृढ़इच्छाशक्ति आदि गुणों के कारण वह घर की चार दीवारी से बाहर आकर बहुत अच्छे ढंग से पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है इसलिए आवश्यक है कि समाज स्त्रो-पुरुष का भेद-भाव समाप्त कर अपनी संकुचित मानसिकता त्याग दें यदि इन्हें भी समान व्यवहार व समान अवसर दिए जाए, पूर्ण शिक्षित किया जाए तो वह भी बड़ी से बड़ी चुनौतियों का सामना कर सकती है जैसे कहा जाता है प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे स्त्री का हाथ होता है उसी प्रकार एक सफल स्त्री के पीछे भी पुरुष का हाथ हो, चाहे वह पिता के रूप में हो, भाई के रूप में पति व पुत्र के रूप में। तभी एक सभ्य व सुस्कृंत समाज की रचना हो सकती है जिससे स्त्री भी समाज में पारिवारिक व सामाजिक संतुलन बनाए रखते हुए तेजो से आगे बढ़ सके। स्त्रियों के लिए भी आवश्यक है कि वे पारम्परिक मूल्यों,

संस्कृति, नैतिकता व नारी सुलभ गुणों को न त्यागते हुए आगे बढ़े। स्त्री पुरुष एक साथ मिलकर ही एक बेहतर समाज का निर्माण कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ-

1. दीना पाहि विभो त्वमेव शरणं नान्यः शरण्योऽस्ति में पाथ्यैर्वं विनता प्रजातपुलका प्रोद्वीक्ष्य मूर्तेमुखम्। मीरा लहरी – प. क्षमाराव, निर्णयसागर, प्रेस बाम्बे 1944
2. दीपिका, पृ. 125-20
3. इक्षुगन्धा (कथा संग्रह) राजेन्द्रमिश्र, वैजयन्तप्रकाशन, राँची, 1986
4. सुते! विधौ वामविधायिनि व्रंत सुताय में स्निग्धमनानयाऽत्यजः।
   पतिव्रतानामभिरक्षितत्रपा त्वमेव वन्द्याऽसि ममैव साधुना।
   त्वयोन्नतं दाशरथं शिरोऽद्यतत् त्वया प्रकाशोऽन्वय एषभास्वतः।
   त्वयाऽस्ति पूताननुमानवी मही त्वसा सगर्वं श्वलु राष्ट्रमस्ति नः।।
   रेवा प्रसाद द्विवेदी – उत्तरसीताचरितम् 1-16, 20
   कालिदास संस्थान वाराणसी, 1990
5. दग्ध्वा स्वगेहं स्वयमग्निदाहैः ततो ज्वलन् यः प्रतिवेशिसद्म।
   दग्धुं प्रमत्तोऽयतताततायी, क्षम्यो भवेन्नैवसदुर्मदान्धाः।।
   डॉ. गोस्वामी बलभद्रप्रसाद शास्त्री – इन्दिराजीवनम्
6. चोरहरणम् महाकाव्यम्, परमानन्दशास्त्री, अलीगढ़
   देवासुरनरगन्धर्वदनुजजातीनां, निर्वेशिष्ट्यं सा सभाप्रकृतिराद्यन्तां।
   प्रामभवत् सम्प्रतिभवति भविष्यति भूयो, नवनवाहिनारी शोष्णण कथाः अनन्ताः।
7. इयमग्नि शिखा ज्वलिता सहसैव कथं हृदये। अग्निशिखा हृदयगतम्, पृ. 7

❖

International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(5): 227-232

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(5): 227-232
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-09-2019
Accepted: 23-10-2019

डॉ. दीपक कालिया
ज़ाकिर हुसैन, दिल्ली कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
भारत

responing Author:
दीपक कालिया
र हुसैन, दिल्ली कालेज
ी विश्वविद्यालय, दिल्ली

आत्मप्रबन्धनं पंचतन्त्रस्य अपरीक्षितकारकतन्त्रञ्च-वर्तमानराजनीतिसन्दर्भे

डॉ. दीपक कालिया

प्रस्तावना

जीवने सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक-अध्यात्मिक-इत्यादिषु क्षेत्रेषु सफलतायाः प्रमुखसाधनम् आत्मप्रबन्धनमेव। आत्मप्रबन्धनं मानवाय अत्यावश्यकम्। वर्तमानकाले आत्मप्रबन्धनं बहुचर्चितः विषयः। पञ्चतन्त्रे पं. विष्णुशर्मणा कथामाध्यमेन कोमलमतिराजकुमारान् प्रति ये उपेदशाः दत्ताः तेऽपि मूलतया आत्मप्रबन्धनविषये एव सन्ति। यथा अपरीक्षितकारकतन्त्रस्य पञ्चदशकथासु काम-क्रोध-मद-लोभादयः मानवस्य विनाशकारकाः एतदेव उपदिष्टम्। एतेषां निवारणेन एव आत्मप्रबन्धनम् संभवम्। प्रस्तुत शोधपत्रस्य मुख्यत्रयबिन्दवः- 1. आत्मप्रबन्धनम्, 2. अपरीक्षितकारकतन्त्रे आत्मप्रबन्धनम्, 3. वर्तमानराजनीतिसन्दर्भे समन्वयम् इति

आत्मप्रबन्धनम्

आत्मनः प्रबन्धनम् इति "आत्मप्रबन्धनम्"। आंग्लभाषायां 'Self Management' इति कथ्यते। अत्र आत्मन् शब्दोऽयं स्वस्य वाचकः न तु जीवात्मनः, यतोहि "Self" इति शब्दः आत्मावाचकः न भवितुं शक्यते। "आत्मा" आंग्लभाषायां 'Soul' इति कथ्यते। अपरञ्च आत्मा तु निर्विकारः तस्य प्रबन्धनं कथं कर्तुं शक्यते? अतएव अत्र आत्मप्रबन्धनम् अर्थात् स्वस्य प्रबन्धनम्।

प्रबन्धनशब्दस्य प्रयोगः सामान्यतया 'प्रबन्ध' इति रूपेण क्रियते। वर्तमान शिक्षा क्षेत्रे "प्रबन्धनम्" इति विषयः अति महत्त्वपूर्णः सञ्जातः। प्रबन्धनविषये अनेकेषां-विदूषां मतानि एवमेव सन्ति-

विलियम एच. न्यूमैन (William H. Newman) महोदयः प्रबन्धस्य अर्थं वर्णनयन् अकथयत् यत् "कंचित् सामान्योद्देश्यं प्राप्तुं कस्यचित् जनस्य समूहस्य वा प्रयासानां मार्गदर्शनम्, नेतृत्वं नियंत्रणमेव च प्रबन्धनम् इति कथ्यते।[1]

अक्सर (Akshar)

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सचिन कुमार

for the paper titled

अनुष्टुप् एवं उपजाति छन्द–विमर्श

Published in अक्सर Vol-13, Issue-01 Year 2019 ISSN: 22782338

International Refereed and Indexed Journal for Research Publication

With Impact Factor 5.2 UGC APPROVED journal Sr No. 41061

Index Copernicus Value (ICV) 100 & Indexed in Thomson Reuters

S.N. Sharma

Editor-In-Chief

editor@aksharjournal.com

UGC

University Grants Commission

अक्सर (Akshar)

EDUINDEX